नरसिंह चिन्तामण केलकर

रामचन्द्र माधव गोले

भारतीय
साहित्य के

H
891.46
K 279 G

भारतीय साहित्य के निर्माता

नरसिंह चिंतामण केलकर

लेखक
रामचंद्र माधव गोले

अनुवादक
आनन्द कुशवाहा

साहित्य अकादेमी

Narsingh Chintaman Kelkar : Hindi translation by Anand Kushwaha of Ramchandra Madhav Gole's monograph in English. Sahitya Akademi, New Delhi (Second Printing : 1984),

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15·00

Library IIAS, Shimla
H 891.46 K 279 G
00087451

© साहित्य अकादेमी

प्रथम संस्करण : 1969
द्वितीय मुद्रण : 1984

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय
रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली-110001

क्षेत्रीय कार्यालय
ब्लाक V-बी, रवीन्द्र सरोवर स्टेडियम, कलकत्ता-700029
29, एलडाम्स रोड (द्वितीय मंज़िल), तेनामपेट, मद्रास-600018
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई-400014

H
891.46
K279G

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15·00

Acc. No. 87451
26-6-96

मुद्रक
स्वतन्त्र भारत प्रेस,
दिल्ली-110006

आभार

श्री जयंतराव तिलक, जिन्होंने मुझे 'केसरी' आफिस लाइब्रेरी के स्वतंत्र प्रयोग की अनुमति दी,

श्री वी० डी० घाटे और श्री अच्युत पटवर्धन, जिन्होंने पांडुलिपि के बारे में अनेक बहुमूल्य सुझाव दिए,

श्री प्रभाकर पाध्ये, जिनकी निरंतर रुचि के बिना पुस्तक में अनेक महत्त्वपूर्ण संयोजन एवं संशोधन न हो पाते,

और

साहित्य अकादेमी, जिसने मुझे यह जीवनी लिखने का कार्य सौंपा,

इन सबके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ ।

रामचंद्र माधव गोले

अनुक्रम

१.	मोदनिम्ब से पूना	९
२.	महाराष्ट्र (१८७०-१८९५)	१३
३.	पत्रकार	१९
४.	जीवनी-लेखक	२७
५.	उपन्यासकार, कथाकार, कवि और नाटककार	४०
६.	इतिहासकार	५१
७.	साहित्य-सम्राट्	५८
८.	निबंधकार	७१
९.	मराठी गद्य के शिल्पी	७६
१०.	पश्च लेख	८३
	अनुक्रमणिका	८७
	इस पुस्तकमाला के सम्बन्ध में	९५

अध्याय एक

मोदनिम्ब से पूना

केलकर परिवार मूलत: कोंकण में देवगढ़ से करीब सात मील पूर्व स्थित एक छोटे गांव नानीवड़े का निवासी था। अधिकांश चितपावन परिवारों की तरह केलकर भी निर्धन थे। कोंकण के अधिकांश चितपावन परिवार नौकरी की तलाश में देश जाकर बस गये थे। उन्हीं की तरह केलकर के परदादा ने अपना गाँव छोड़ दिया और मिरज चले आए जो उस समय महाराष्ट्र की एक छोटी देशी रियासत की राजधानी थी। केलकर के पिता चिंतामण का जन्म १८४० में हुआ था। उनको मिरज रियासत में तीन रुपये प्रतिमास पर क्लर्क की नौकरी मिल गई। बाद में रियासत के एक छोटे तालुका मोदनिम्ब के लिए हैडक्लर्क के रूप में उनका तबादला हो गया। चिंतामण केलकर मोदनिम्ब में बारह साल रहे। यहीं पर २४ अगस्त १८७२ को नरसिंह चिंतामण का जन्म हुआ। वे तीन भाइयों में सबसे छोटे थे। सबसे बड़े नारायण या नाना ने स्नातक परीक्षा पास की और धुलिया, पूना और सतारा में अध्ययन-कार्य किया। वे किताबों और अखबारों के शौकीन एक प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। उन्हीं की प्रेरणा से केलकर ने नियमित रूप से 'केसरी' पढ़ने की आदत बना ली।[1] दूसरे भाई महादेव उर्फ अप्पा राजस्व विभाग में चले गए और डिप्टी कलक्टर के पद पर कार्य करते हुए रिटायर हुए।

केलकर ने १८९१ में स्नातक परीक्षा पास की और १८९४ में कानून की उपाधि प्राप्त की। श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर, जो आगे चलकर मराठी के एक मशहूर लेखक बने, उनके समकालीन थे। वे अच्छे दोस्त बन गए और उनकी यह दोस्ती उनके जीवन भर बनी रही। पूना और बम्बई में कॉलेज के इन दिनों के बारे में कोल्हटकर लिखते हैं : 'केलकर उस समय एक बहुत ही मेधावी और सुन्दर नौजवान थे। छात्र जीवन में ही समझौते के प्रति उनके सहज रुझान का हमें पता चल गया। जब कभी हमारे विचार-विमर्श और तर्क में अत्यधिक उत्तेजना आ जाती, केलकर हस्तक्षेप करते और विचार-विमर्श के विषय की जान-

१. आत्मकथा, पृष्ठ ८२

कारी कर लेने के बाद एक मध्यमार्ग का सुझाव देते।'[१] समझौते की यह सहज प्रतिभा केलकर में उनके जीवनपर्यन्त बनी रही। कोल्हटकर ने उस समय केलकर की कठोर परिश्रम की क्षमता को भी देख लिया था। 'हम में से अधिकांश जी भर खाने के बाद सोने चले जाते लेकिन केलकर को हमेशा लेखनरत पाया जा सकता था। वे उस समय वाल्टर स्कॉट की 'रोकबी' का गद्यानुवाद कर रहे थे। कालेज के दिनों में हम पारसी और गुजराती नाटक देखने के बड़े शौकीन थे। मैं उस समय अपना नाटक 'वीरतनय' लिख रहा था जिसमें मुझे केलकर से बड़ी प्रेरणा मिली। मेरे साहित्यिक निबन्धों के बारे में यह विशेष रूप से सच था।'

इसी समय १८९२ में तिलक और आगरकर द्वारा अपने-अपने पत्रों में एक-दूसरे के विरुद्ध प्रयोग की जाने वाली भाषा से वे अत्यधिक दुखी हुए थे। इसके बारे में उन्होंने 'ज्ञानप्रकाश' को एक खत लिखा था, जिसमें उन्होंने लिखा था कि यद्यपि पूना के लोग तर्क करने के बड़े शौकीन थे, फिर भी उनका एकमात्र दोष यह था कि विभिन्न दृष्टिकोणों से तर्क कर रहे व्यक्ति एक-दूसरे के प्रति अभद्र भाषा का प्रयोग करने से हिचकिचाते नहीं थे। उसी खत में उन्होंने एक समाचार-पत्र के कर्तव्यों के बारे में अपना मत व्यक्त किया था। 'एक समाचारपत्र का मुख्य कार्य,' उन्होंने लिखा, 'अनजान और तरुण व्यक्तियों को अनुभवी विद्वान् और शिक्षित व्यक्तियों की राय से परिचित कराना, सामाजिक, नैतिक एवं राजनीतिक विषयों पर सूचनाप्रद लेख लिखना और इस प्रकार जन-जागरण लाना है।'[२] यह लिखते हुए केलकर को ज़रा भी यह गुमान नहीं था कि अपने परवर्ती जीवन में एक दिन वे महाराष्ट्र के उसी समाचार पत्र के सम्पादक बन जाएंगे जिसके बारे में उन्होंने यह मत व्यक्त किया था। फिर भी यह खत उनके भावी पत्रकार-जीवन पर रोशनी डालता है। स्वयं आगरकर ने तिलक से अपने मतभेदों के बारे में जो कुछ लिखा, उससे इस पर रोचक प्रकाश पड़ता है। अपने लेख 'महा-राष्ट्रियों के नाम खुला खत' में वे लिखते हैं, 'जिस प्रकार ये पुनर्संदेहास्पद विरोधी अपने-अपने विचारों के समर्थन में एक-दूसरे से संघर्ष करते हैं, उसकी प्रशंसा करने के बजाय लोग उन पर व्यक्तिगत विद्वेष का आरोप ही लगाते हैं। यह अनुचित है। मेरे दोस्तो, विचारों की टक्कर से तुम इतने भयभीत क्यों हो? कुरीतियों को ध्वस्त करने और सदाचार, संवेदना, सत्यशोध और ज्ञान-प्रेम को बढ़ावा देने के लिए इस जैसी कोई अन्य चीज नहीं हैं।'

१८९५ में केलकर सतारा जिला शहर में बस गए और वकालत शुरू कर दी। यद्यपि इस व्यवसाय में उनकी विशेष रुचि नहीं थी, फिर भी वे सतारा में काफी सुखी लगते थे। एक मध्यमवर्गीय परिवार के तरुण, प्रतिभाशाली लेकिन

१. आत्मकथा, पृष्ठ १६८-१६९
२. वही, पृष्ठ १६८–१७१

निठल्ले वकील का ठेठ जीवन जीते हुए वे बिलकुल संतुष्ट थे—कुछ घंटे कचहरी में, कुछ स्थानीय क्लब के टेनिस कोर्ट में, कुछ साहित्यिक क्रिया-कलाप और थोड़ा बहुत शहर के सार्वजनिक जीवन में हिस्सेदारी।

कवीन्द्र (रवीन्द्र) के बड़े भाई सत्येन्द्रनाथ टैगोर उस समय सतारा में जिला जज थे। केलकर शीघ्र ही उनके परिवार से परिचित हो गए। उन्होंने इतनी बंगाली सीख ली कि ज्योतीन्द्रनाथ टैगोर के नाटक 'सरोजिनी' का मराठी में अनुकूलन कर डाला।

लेकिन शीघ्र ही केलकर के जीवन के एकरूप प्रवाह में अचानक मोड़ आया और वे पहले महाराष्ट्र और फिर समूचे देश के सार्वजनिक जीवन में कूद पड़े। केलकर अपनी आत्मकथा में लिखते हैं : 'फरवरी १८९६ में तिलक सतारा आए। चूंकि मैं एक तरुण, बुद्धिमान और निठल्ला वकील था, इसलिए मुझे उनका साथ देने और उनकी देखभाल करने का कार्य सौंप दिया गया। हम घंटों तक बात-चीत करते रहते। मैं उनसे 'ग्रामान्य'[1] और राजनीतिक सभाओं ही की तरह सामाजिक सम्मेलन के विवादों पर सवाल पूछता। मैं पहले के बारे में उनके दृष्टि-कोण से तो सहमत था लेकिन दूसरे से नहीं। यह तथ्य उनकी नजर से बच नहीं पाया होगा। लेकिन इससे उनके दिमाग में मेरे प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं बना, यह मुझे अगले ही महीने स्पष्ट हो गया। मार्च के पहले हफ्ते में जब तिलक मिरज जा रहे थे, सतारा के एक सीनियर प्लीडर गोविन्दराव रानाडे उसी ट्रेन में चढ़े और चूंकि दोनों एक-दूसरे से परिचित थे, इसलिए एक ही डिब्बे में बैठे। बातचीत के दौरान तिलक ने कहा, 'मुझे एक तरुण कानून स्नातक की तलाश है जो कानून की कक्षाएं चलाने और 'मराठा' में लिखने में मेरी मदद करे। सच है कि यह कोई आकर्षक संभावना नहीं सिद्ध होगा लेकिन यदि सभी ऐसा सोचने लगें तो कोई सार्वजनिक कार्य किस प्रकार आगे बढ़ाया जा सकेगा ?'

गोविन्दराव ने तिलक को आश्वासन दिया कि वे एक उपयुक्त व्यक्ति की तलाश करेंगे।

कुछ दिनों बाद गोविन्दराव सतारा लौटे और वकील कक्ष में हमारी मुलाकात हुई। मुझे देखते ही उन्होंने कहा, 'केलकर, तुम्हारे लिए एक काम है। करोगे क्या ?' तब उन्होंने तिलक से अपनी बातचीत के बारे में मुझे बताया। लिखना मेरे लिए कोई समस्या नहीं थी लेकिन कानून-कक्षा चलाने के लिए अपनी योग्यता में मुझे संदेह था। लेकिन गोविन्दराव ने मेरी आपत्ति पर ध्यान नहीं दिया और तिलक का निमत्रंण स्वीकार करने के लिए मुझे राजी कर लिया। तिलक ने

---

१. ग्रामान्य का अर्थ है सामाजिक बहिष्कार। पूना के कुछ भद्रपुरुषों ने स्थानीय ईसाई मिशन में चाय पी ली थी या ऐसा मान लिया गया था और इसलिए समाज द्वारा बहिष्कृत कर दिए गए थे।

साक्षात्कार के लिए मुझे तुरन्त पूना बुलाया, अब मैं पूना में तिलक का मेहमान था।

मैंने तिलक को बताया कि 'मराठा' का संपादन करने की अपनी क्षमता पर पूरा विश्वास मुझे है लेकिन ठीक-ठीक कह नहीं सकता कि 'केसरी' के लिए भी लिखने की क्षमता मुझमें है। तिलक ने कहा, 'वह सवाल अभी खड़ा नहीं होता। तुम कानून-कक्षा का प्रबन्ध और 'मराठा' का संपादन कर लो, यही काफी है। इस समय कानून कक्षा की देख रेख श्री वाकनिस करते हैं। मैं उनसे कानून-कक्षा के बारे में बात करूंगा और तुम्हें सूचित करूंगा।' तब मैं सतारा लौट आया, यह सोचते हुए कि तिलक से कोई सूचना मिलने में कई महीने लग जाएंगे।

लेकिन इस बार भी चीजें भिन्न प्रकार से घटित हुईं। १५ मार्च को रानाडे के लिए भेजे अपने खत में तिलक ने लिखा, 'कानून-कक्षा के बारे में हमारे (तिलक और केलकर के) बीच किसी गलतफहमी का सवाल नहीं उठता। लेकिन अखबार की नीति के बारे में मैं अपने बीच कोई गलतफहमी नहीं आने देना चाहता। मैं उसे (केलकर को) उसके मत-स्वातंत्र्य से वंचित नहीं करना चाहता लेकिन 'केसरी' और 'मराठा' दोनों की ही निश्चित नीति है जो कभी नहीं बदलनी चाहिए। केलकर को यह हमेशा याद रखना चाहिए···मेरा खयाल है कि धीरे-धीरे मेरे जीवन का अंत पास आ रहा है और मुझे एक ऐसे दोस्त और कार्यकर्ता की तलाश है जो मेरे शेष सार्वजनिक जीवन में कभी मेरा साथ न छोड़े।'[1] भावी संभावना के बारे में तिलक का कहना था कि वह पूर्ण रूप से मेरी कठोर श्रम-क्षमता और योग्यता पर निर्भर करेगी। खत के अंत में उन्होंने लिखा था कि यदि मैं इस सबसे सहमत हूं तो १ अप्रैल को काम पर लगने की सूचना दे दूं।

यह खत १५ मार्च को लिखा गया था। लेकिन अगले ही दिन अर्थात् १६ की सुबह, रानाडे को तिलक से इस आशय का तार मिला :

'यदि शर्तें स्वीकार हैं तो केलकर से तुरंत काम शुरू करने के लिए कहो। तार से सूचित करो।'

केलकर लिखते हैं कि चीजें इतनी तेजी और अप्रत्याशित तरीके से घटित हुईं कि अंतिम निर्णय लेने के पहले अपने बड़े भाई की राय लेने के लिए भी उनके पास समय नहीं था। बाद में उनको लिखे एक खत में वे टिप्पणी करते हैं, 'लगता है मेरे जीवन में एक अनुकूल मोड़ आने वाला है। मेरी दोहरी नियुक्ति होगी। तिलक की कानून-कक्षा में अध्यापक के रूप में और 'मराठा' के संयुक्त संपादक के रूप में।' केलकर आगे लिखते हैं, 'इस प्रकार सतारा में ही अपना शेष जीवन बिताने के बजाय मैं पूना का स्थायी निवासी, सौ फीसदी पूनावाला हो गया।'[2]

१. आत्मकथा (पृष्ठ १९१-१९२)
२. आत्मकथा (पृष्ठ १९३)

अध्याय दो

महाराष्ट्र १८७०-१८९५

प्रत्येक भावुक व्यक्ति उस सामाजिक और राजनीतिक परिवेश के प्रति जिसमें वह विकसित होता है, अपने विशिष्ट ढंग से प्रतिक्रिया करता है और स्वयं भी अपने चारों ओर की घटनाओं, व्यक्तियों और समस्याओं से प्रभावित होता है। हम देख चुके हैं कि अपने छात्रजीवन में ही केलकर ने अपने चारों ओर की घटनाओं के प्रति कैसी प्रतिक्रिया की। केलकर की समकालीन घटनाओं और व्यक्तियों पर, जिन्होंने असंदिग्ध रूप से केलकर को प्रभावित किया था, नज़दीक से दृष्टि डालना उपयोगी होगा। तिलक की जीवनी में केलकर लिखते हैं कि महाराष्ट्र की राजनीति सागर की उस ऊंची लहर के समान है जब एक के बाद एक बढ़ती हुई लहर किनारे के अधिकाधिक निकट आती जाती है। महाराष्ट्र के शिक्षित व्यक्तियो की दूसरी पीढ़ी विचार और विवेक की स्वतंत्रता में पहली पीढ़ी से बहुत आगे बढ़ गई तथा तीसरी पीढ़ी ने स्वतंत्रता की आकांक्षा और इसको हासिल करने के लिए व्यक्तिगत कुर्बानी की भावना में दूसरी को भी पीछे छोड़ दिया। यह व्यापक होती हुई चेतना की प्रतिक्रिया हमें दादाभाई नौरोजी से जस्टिस रानाडे और विष्णुशास्त्री चिपलूणकर तक मिलती है। सरकारी सेवा से इस्तीफा देने के बाद विष्णुशास्त्री ने जिस कार्य की शुरूआत की, उसे तिलक और आगरकर ने पूर्णकालिक कार्य के रूप में आगे बढ़ाया। यह देश में विकासशील राजनीतिक तथा राष्ट्रीय चेतना का स्वाभाविक परिणाम था।

हमें उस धार्मिक, सामाजिक और शैक्षणिक स्थिति पर दृष्टि डालनी चाहिए जो ब्रिटिश राज्य की स्थापना के बाद महाराष्ट्र में विद्यमान थी। महाराष्ट्र के लोगों को यह साक्षात् करने में कुछ समय लगा कि शनिवारवाड़ा पर यूनियन जैक फहराया जाना एक शासक का दूसरे द्वारा विस्थापन नहीं बल्कि प्रशासन, शिक्षा, विधि, न्याय और कर की विद्यमान प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तनों का प्रारंभ सूचित करता था। नये प्रबन्ध के साथ ही ब्राह्मण शासक वर्ग पूरी तरह

हतोत्साह हो गया। उसने एलफिंस्टन द्वारा प्रवर्तित शिक्षा और प्रशासन सम्बन्धी विचारों के अनुरूप ढलने में अपनी असमर्थता सिद्ध कर दी।

जबकि शहरी अभिजात वर्ग अपना आधार खोजने के लिए दुस्साहसिक प्रयास कर रहा था, ग्रामांचलों की व्यापक जनसंख्या सम्पूर्ण विनाश की संभावनाओं का सामना कर रही थी। भूमि राजस्व सम्बन्धी ब्रिगल की नई व्यवस्था ने, जो वैधानिकता और बराबरी के उपयोगितावादी सिद्धांत पर आधारित थी, गाँव के पटेल, मामलातदार, देशमुख और पूना न्यायालय के बीच की पुरानी कड़ी को तोड़ दिया। इसने ग्रामीण जनसमुदाय में आसक्ति और परस्पर-निर्भरता की पुरानी भावना को भी खत्म कर दिया और इसके स्थान पर अन्यत्रवासी ज़मींदारों का एक नया वर्ग बना दिया। अब तक के स्वामियों और कृषकों ने अपनी जोती जाने वाली ज़मीन से वंचित हो जाने पर अपने को भूमिहीन मज़दूरों की स्थिति में पाया जो अल्पवेतन के लिए उसी ज़मीन पर काम करते थे जिसके वे कभी मालिक थे। भूमि राजस्व की नई रैयतवाड़ी व्यवस्था ने ग्रामांचलों में नये सामाजिक तनाव उत्पन्न कर दिए जो १८७२ के भयानक अकाल से बढ़कर १८७५ के किसान-विद्रोह में परिणत हो गए।[1]

एलफिंस्टन की नई शिक्षा-नीति का प्रभाव सबसे पहले शहरी आबादी पर दिखाई पड़ा। नई शिक्षा-नीति का प्रत्यक्ष प्रतीक बम्बई विश्वविद्यालय १८५७ में स्थापित किया गया था।

१८७५ के पहले जब तिलक ने बी०ए० परीक्षा पास की, महाराष्ट्र में केवल १७९ स्नातक थे। १८७४ में पूना में ३५ से ३७ तक प्लीडर थे। १८८० में बम्बई प्रेसिडेंसी में पाँच हज़ार से कम प्राथमिक विद्यालय थे और क्षात्रों की संख्या २७५००० थी। पूना में बालिकाओं का पहला गैर-ईसाई प्राथमिक विद्यालय १८४८ में जोतिबा फुले ने शुरू किया था। इससे लोगों में इतना रोष उत्पन्न हुआ कि उन्होंने उनकी पत्नी को पत्थरों से मारा क्योंकि वह अपने पति की सहायता के लिए जाती थीं। भारतीय बालिकाओं के लिए हाई स्कूल, तब फीमेल हाई स्कूल, नाम से विख्यात, १८८४ में शुरू हुआ और १९१४-१५ तक एक नौकरानी घर-घर जाकर लड़कियों को एकत्र करती और उन्हें सुरक्षित स्कूल पहुँचाती थी। पहली बार स्कूल शुरू होने पर यह कार्य स्वयं श्रीमती रमाबाई रानाडे ने किया था। 'ज्ञानप्रकाश' का आरंभ १८४९ में हुआ और 'दीनबंधु' की शुरूआत १८६८ में जोतिबा फुले के सहकर्मी मालेकर ने की थी। बम्बई से प्रकाशित होने वाले पत्र थे 'दर्पण' और 'प्रभाकर' तथा ईसाई मिशनरियों का 'ज्ञानोदय'।

---

१. व्यापक विवरण के लिए देखें रवीन्द्र कुमार की पुस्तक 'उन्नीसवीं सदी में पश्चिमी भारत' (रूटेलज एंड केगन पाल, १९६८)

प्रथम मुद्रित पंचांग १८३१ में सामने आया और दादोबा पांडुरंग का व्याकरण १८३६ में।

उसी वर्ष श्रीपाद बाबाजी ठाकुर आई० सी० एस० परीक्षा में बैठने के लिए इंग्लैंड गए। ऐसा करने वाले वे पहले महाराष्ट्रीय थे। सम्पूर्ण समुदाय पर धार्मिक मतांधता और परंपरा का शिकंजा इस तथ्य से प्रत्यक्ष होता है कि सार्वजनिक सभा द्वारा १८७२ में इंग्लैंड में वित्त आयोग के समक्ष गवाही देने के लिए महाराष्ट्र से एक प्रतिनिधि भेजने का फैसला करने के बावजूद सामाजिक एवं धार्मिक बहिष्कार के भय से कोई भी इस यात्रा पर जाने के लिए तैयार नहीं मिला। संभवतः इसी वजह से रानाडे भी इंग्लैंड जाने से वंचित रह गए यद्यपि सामान्य स्थिति में वे फीरोजशाह मेहता के भी पहले यह यात्रा कर चुके होते। यह धार्मिक असहिष्णुता कुख्यात 'ग्रामान्य' प्रसंग में प्रत्यक्ष होती है जिसने बाद में पूना के ब्राह्मण समुदाय को हिला दिया।

केलकर यह तथ्य सामने रखते हैं कि १८९८ में मद्रास-यात्रा पर तिलक ने शहर के अनेक प्रमुख नागरिकों को भोजन पर आमंत्रित किया। आमंत्रितों में उच्च शिक्षित व्यक्ति थे—स्नातक, द्विस्नातक, अध्यापक और विधिवेत्ता। लेकिन धार्मिक परंपरा का शिकंजा इतना मजबूत था कि सभी अय्यरों ने निचली मंजिल पर और सभी आयंगरों ने पहली मंजिल पर खाना खाया। उनकी सेवा के लिए भी दो भिन्न प्रकार के व्यक्ति थे।

इसके बाद महिलाओं की दशा के बारे में कुछ कहने की ज़रूरत नहीं रह जाती। हरिनारायण आप्टे के उपन्यासों में हम इसका बहुत ही सहृदय चित्रण पाते हैं। लेकिन परिवर्तनशील समय के संकेत भी वहां थे। १८६५ में विधवा पुनर्विवाह समाज की स्थापना हुई। महाराष्ट्र में पहला विधवा पुनर्विवाह १५ जून १८६९ को हुआ। दरअसल यह जन-मन को आंदोलित करनेवाले एक विचार की प्रथम अभिव्यक्ति थी। यह इसलिए भी महत्त्वपूर्ण था कि इसने समस्या की ओर महर्षि कर्वे का ध्यान आकर्षित किया और महिला उद्धार के लक्ष्य में उनके चिर-स्मरणीय कार्यों की नींव रखी।

उस समय एक और महत्वपूर्ण तथ्य था महाराष्ट्र के किसानों की बढ़ती हुई निर्धनता। १८७२ के भयानक अकाल ने ग्रामांचलों में अधिसंख्य लोगों की जान ले ली। इसका प्रभाव इतना व्यापक था कि अनेक स्थानों पर किसान विद्रोह कर उठे। लार्ड लिटन के दरबार, जिसमें महारानी विक्टोरिया भारत-साम्राज्ञी घोषित की गई थीं, से कुछ वर्ष पहले ही आने के कारण इस अकाल ने भारत के प्रति अंग्रेज़ों की कथनी और करनी के अंतर्विरोध को सामने ला दिया।

जातियों और रीति-रिवाजों से बोझिल समाज में एक नई ही जाति उभर आई, अंग्रेज़ी शिक्षित भारतीयों की। वे पाश्चात्य विचारों, पाश्चात्य संस्कृति

और पाश्चात्य जीवनविधि से इस प्रकार चौंधियाए हुए थे कि अपनी भाषा, अपने धर्म, अपनी परम्परा और अपने देश के लिए उनका कोई उपयोग नहीं था। हरिभाऊ आप्टे अपने एक उपन्यास में एक चरित्र के माध्यम से ऐसे व्यक्तियों का मज़ाक उड़ाते हैं। विष्णुशास्त्री ने पहली बार उन गम्भीर खतरों की ओर इशारा किया जो उस देश और जनगण के सामने आते हैं जो अपनी राष्ट्रीय चेतना खो देता है और एक विजातीय संस्कृति के गुलाम की तरह रहना पसंद करता है।

इन दो, एक मृत अथवा मृतप्राय और दूसरी जन्म लेने में असमर्थ दुनिया के बीच महादेव गोविन्द रानाडे का व्यक्तित्व हम पाते हैं। एक उच्च प्रतिभा के स्वामी व्यक्ति, जिसने बेकन की तरह समस्त ज्ञान-क्षेत्रों को अपनाया था, रानाडे ने अपनी सारी क्षमताओं को इस आकारहीन मानवता में जीवन फूंकने में लगा दिया। इसके लिए उन्होंने अनेकानेक क्रिया-कलापों की शुरूआत की जो लोगों को उस समाज के प्रति, जिसमें वे रहते हैं, अपनी विविध जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक बना सके। इसकी आवश्यकता प्रत्यक्ष हो जाती है जब हम पढ़ते हैं कि उस समय की राजनीति इतनी प्रारम्भिक और सरल थी कि एक गंदी अथवा सँकरी सड़क के बारे में शिकायत को भी राजनीति मान लिया जाता था। स्थानीय स्वायत्त प्रशासन निश्चय ही अपनी उदासीनता के लिए विशिष्ट था। इस समय शुरू होने वाले और आज तक जीवित अनेक सार्वजनिक संस्थान और संगठन, जैसे विचार-विमर्श समाज, ग्रीष्म व्याख्यान माला, औद्योगिक सम्मेलन, महिला हाई स्कूल, स्वदेशी सामान्य पुस्तकालय, प्रार्थना समाज, सार्वजनिक सभा या तो रानाडे के मस्तिष्क की उपज थे या उनका सक्रिय समर्थन पाते थे। लगभग पच्चीस वर्ष तक और व्यवहारत: अपने सम्पूर्ण जीवन भर रानाडे ने लोगों को संगठित होने की, अपनी ज़रूरतों और आकांक्षाओं को व्यक्त करने के लिए एक सामान्य सार्वजनिक मंच पर आने की शिक्षा दी।

रानाडे प्रत्येक विपदांधकार में आशा की रेखा के अस्तित्व में विश्वास करते थे। इसलिए वे मनते थे कि भारतीय-अंग्रेज सम्बन्ध इतिहास की एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना नहीं बल्कि दवी इच्छा की अभिव्यक्ति थी। वे सोचते थे कि अंग्रेज़ इस देश को शांति देने और यहां कानून का शासन स्थापित करने आए थे। इसलिए इस अवस्था को विचारहीन मूलगामी कार्रवाइयों से अस्त-व्यस्त करना घातक था। अपने जनगण का भाग्य सुधारने की उनकी वास्तविक आकांक्षा और इस दिशा में उनका अथक प्रयास, उनका इतिहास-बोध और समस्त आधुनिक सुधारों के लिए प्राचीन सिद्धान्तों की स्वीकृति खोज लेने की उनकी प्रकृति हमारी आर्थिक औद्योगिक और राजनीतिक समस्याओं का उनके द्वारा गहन और मौलिक विश्लेषण उन्हें इस युग का सर्वाधिक आकर्षक व्यक्तित्व बना देते हैं। सर्वज्ञ माधव नाम से उन्हें लोग प्यार से बुलाते थे।

अंश प्रस्तुत किए जा सकते हैं। बंगभंग के विरुद्ध आंदोलन ने लोगों को कैसे प्रभावित किया, इसका निम्नलिखित उदाहरण अन्य किसी उदाहरण की ही तरह उत्तम सिद्ध होगा :

> '...आंदोलन अनेक विविध धाराओं में फूट पड़ा। अखबारों ने साहसपूर्ण और उत्तेजक लेख लिखना सीख लिया। गूंगे वाचाल हो गए। सरस्वती ने आलसी बुद्धिजीवियों को अपने मयूरपंख से गुदगुदाकर लिखने की प्रेरणा दी। कवियों ने प्रेरणादायी गीत लिखे। भाषा ने नये और सुन्दर आभूषण धारण कर लिए। विद्वान व्यक्तियों ने वर्तमान की व्याख्या के लिए प्राचीन पुस्तकों से उद्धरण और कहावतें खोज निकालीं। विलासितापूर्ण जीवन के आदी व्यक्ति अपने व्यसन के लिए शर्म सहसूस करने लगे। कायर सूरमा हो गए और सामूहिक कार्यवाही ने सभी गलतफहमियों का अंत कर दिया। किशोर उम्र के लड़के साहस में बड़ों बड़ों के कान काटने लगे।'[१]

केलकर का व्यंगबोध कभी उनका साथ नहीं छोड़ता। तिलक की जन्म कुंडली के बारे में लिखते हुए वे कहते हैं, 'तिलक की जन्म कुंडली से जितनी भविष्य-वाणियां की गईं उतनी किसी और से नहीं, लेकिन यह मानना पड़ेगा कि और किसी के भी मामले में भविष्यवाणियां इतनी अधिक गलत नहीं हुईं। तिलक के मशहूर होने तक उनकी कुंडली में ग्रह अलग-अलग दिखाए गए थे लेकिन बाद के वर्षों में कोई भी उन्हें चैन से पड़ने नहीं देता था। लगता है ग्रहों ने भी फैसला कर लिया था कि इस गलत सलूक का बदला वे भविष्यवाणियों को गलत सिद्ध करके लेंगे।'

मध्यप्रदेश और बरार (अब महाराष्ट्र) के तूफानी दौरे में एक शाम तिलक को भंडारा में एक सभा को सम्बोधित करना था। रास्ते में तिलक को देर हो गई और वे ११ बजे रात भंडारा पहुंचे। उनके आगमन का समाचार आग की तरह फैल गया और स्थानीय सिनेमाघरों की भीड़ सभास्थल की ओर दौड़ पड़ी।

केलकर एक पत्रकार, इतिहासकार और शब्दों के प्रति सूक्ष्म अनुभूति वाले कलाकार थे। उनके द्वारा लिखी गई तिलक की जीवनी इन तीनों का संयोजन है और विषय के साथ-साथ उसके लेखक के बारे में भी उतना ही बताती है।

तिलक की जीवनी की तुलना में गैरीबाल्डी की जीवनी लघुतर और अधिक सुगठित है। यह इसलिए हो सकता है कि केलकर को अंग्रेजी पुस्तकों से जुटाई नयी सामग्री पर ही अधिक निर्भर करना पड़ा और विषय से अंतरंग परिचय का तो सवाल ही नहीं उठता। गैरीबाल्डी की ओर केलकर के आकर्षण का कारण यह

१, खण्ड २, पृष्ठ ६५

हो सकता है कि गैरीवाल्डी इटली में वही कर रहा हो जो भारत में अन्य लोग कर रहे थे, अर्थात् अपने देश की आज़ादी के लिए संघर्ष। चूंकि केलकर के समस्त लेखन का उद्देश्य लोगों को शिक्षित करना था, यह स्वाभाविक था कि वे अपना ध्यान इटली के विख्यात योद्धा की ओर लगाते। यहाँ भी केलकर के लिए काफी गुंजाइश थी कि वे विस्तार से आसवुर्ग साम्राज्य के इतिहास, अमरीकी महाद्वीप के संक्षिप्त इतिहास के साथ अमरीका में गैरीबाल्डी कैवर, किंग विक्टर इमानुएल इत्यादि के जीवन-वृत्तांतों का वर्णन करते। इस अभिलेख को पूरा करने के लिए वे नेपोलियन तृतीय और उसकी विदेश नीति को भी कुछ स्थान दे सकते थे। सौभाग्य से केलकर यह कुछ भी नहीं करते और फलस्वरूप गैरीवाल्डी का संपूर्ण जीवन, आस्ट्रियन कुशासन से इटली की मुक्ति के लिए उसका संघर्ष, उसकी प्रवंचना, उसकी पत्नी अनीता की दुखद मृत्यु ये सभी स्पष्ट व्यक्त होते हैं। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि गैरावाल्डी की जीवनी पाठक के मन को उतना नहीं छूती जितना कि बहुत अधिक लंबी तिलक की जीवनी। इसका कारण स्पष्ट है। भारतीय पाठकों के लिए किसी भी हालत में तिलक गैरीब्राल्डी से ज्यादा निकट और प्रिय व्यक्ति थे और बहुतों के लिए उनकी जीवनी पढ़ना भावनाओं का सुखद उद्रेक होता था।

केलकर की आत्मकथा में भी वही त्रुटियां हैं जो उनकी लिखी तिलक की जीवनी में। सामान्य की ही भाँति वे अपव्ययी मनोदशा में आत्मकथा के गुण-दोष के अनावश्यक विवेचन से आरंभ करते हैं और वृद्धावस्था के सुखों को स्पष्ट करने के लिए सिपओ और कातों के बीच वृद्धावस्था पर हुए एक सम्पूर्ण वार्तालाप को ही लिप्यंतरित करके देते हैं। इसी प्रकार १९२०-३८ की घटनाओं की एक समीक्षा में वे १९२३ के केन्द्रीय असेम्बली चुनावों में विभिन्न प्रत्याशियों द्वारा प्राप्त मतों की जिलावार सूची दी है। यह समूचा अध्याय घटनाओं और व्यक्तियों का सम्मिश्रण है, कुछ प्रासंगिक और अन्य बहुत कम प्रासंगिक।

दरअसल, आत्मकथा का द्वितीय भाग किसी अन्य चीज़ से अन्य घटनाओं का संकलन है। इसमें भी त्रुटि यह है कि केलकर अपनी कर्रवाइयों के पक्ष में उनको उचित ठहराने के लिए तर्क जुटाते हैं न कि उनको एक निर्लिप्त प्रेक्षक की तरह दूरी से देखने की कोशिश करते हैं। वे एक समूचा अध्याय भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास को समर्पित कर देते हैं जिससे उनका दूर-दराज का भी सम्बन्ध नहीं रहा था। लेकिन चूंकि वे स्पष्टतः यह स्वीकार करते हैं कि उनकी आत्मकथा तीर्थयात्रा के विवरण की भाँति है, हमें बहुत सी चीज़ों को उस प्रकार देखना पड़ेगा जो कि एक तीर्थ यात्री रास्ते में करता है और जो उसकी तीर्थयात्रा के उद्देश्य के लिए प्रासंगिक नहीं होती। पहले छत्तीस पृष्ठों को छोड़कर आत्मकथा के प्रथम खंड का शेष भाग अत्यंत पठनीय है। वे कोंकण के प्रति

अपने प्रेम का अत्यंत स्वच्छंदता से वर्णन करते हैं :

'अपने अहाते में पेड़ के नीचे बैठकर नंगे बदन पर वायुक्रीड़ा होने देना और सामने सागर का अवलोकन करना आनंद का उत्कर्ष है।'[1] वे गरीब परिवार में दो जून खाना जुटाने का प्रयास करती हुई अपनी मां की मोहक तस्वीर खींचते हैं, वह बहुत दिनों तक ज़िन्दा रहीं और अपने बेटे को प्रसिद्ध और भाग्यशाली होते देख सकीं। आंखों में आनंद के आंसू लिए वे अपने प्रसिद्ध बेटे द्वारा घर लाई गई मालएँ और फूल सहेजतीं। इतना ही सहज है उनकी सगाई और विवाह का विवरण। दोनों परिवारों में अत्यन्त घनिष्ठ मैत्री सम्बन्ध था और दोनों एक ही घर में रहते थे। बचपन में केलकर और उनकी पत्नी एक साथ खेलते थे। हालांकि केलकर यह जान गए कि क्या घटित हो रहा है, उनकी भावी पत्नी बिलकुल अबोध थी। इस बात से मैं अधिक लज्जा करने लगा, यद्यपि मैं संभावित वर था।' केलकर यह बताते हैं कि कैसे विवाह निश्चित हो जाने के बाद उनके सास-ससुर उनका विशेष ध्यान रखने लगे। उन्हें उनके घर से अक्सर निमंत्रण मिलता और आम, पपीता या कुछ विशेष चीज़ उन पर थोप दी जाती।

मिरज जैसे छोटे और दूरस्थ स्थान में किसी नाट्य दल का आगमन कस्बे के नागरिकों के लिए एक महत्त्वपूर्ण घटना होती थी। अपने बचपन के समय के मिरज की नाटयशाला और अभिनेताओं का रोचक वर्णन करते हुए केलकर हमें आनंदित कर देते हैं, 'नाट्यशाला मंच को शामिल करते हुए ४०' × ४०' का एक प्रांगण था। बगल के एक बरामदे को परदा लगाकर ग्रीन रूप में बदल दिया गया था। मंच पर केवल एक परदा था। सौ से डेढ़ सौ तक दर्शक वहां हो सकते थे। प्रवेशद्वार एक ही था जिससे दर्शक और अभिनेता दोनों ही जाते थे। उस तंग निकास से स्वर्ग, नर्क और पृथ्वी सबके ही नागरिक भेड़ियाधसान होते थे।··· कुछेक बार शैतानों की एक पूरी टोली ही मंच पर चढ़ जाती, जिसमें पन्द्रह-पन्द्रह मिनट तक लग जाते थे। उनकी तुलना में साधारण लोगों को देवता कहा जा सकता है। अपना रास्ता बनाने के लिए परदे को एक तरफ खींच देते और यदि उन्हें कुर्सी देने के लिए कोई मसखरा वहां नहीं होता तो वे स्वयं एक कुर्सी बाहर निकालकर बैठ जाते। गायन कार्य सूत्रधार अथवा मुख्य नायक का विशेषाधिकार था। अभिनेत्रियाँ श्रुतिमधुर स्वरों में बात करती हुई एकाएक रूक जातीं और दर्शकों से ध्यान देने का आग्रह करतीं। फिर सूत्रधार अपनें कठोर असांगीतिक स्वर में मंजीरे की संगत में गाना शुरू कर देता। यह संगीत नाटिका की तरह से था जिसमें गद्य खंडों के बीच उच्च स्वरीय जादुई सम्मोहन शक्ति और कथाओं के अपरिमित भंडार का रोचक वर्णन करते हैं।

---

१. आत्मकथा ५५

हम इन्हें छोड़कर पूना कोल्हापुर और बम्बई में केलकर के कालेज दिनों की ओर चलते हैं। हमें पता चलता है कि केलकर नाटक के शौकीन एक सुन्दर नौजवान थे और कालेज छात्रों द्वारा अभिनीत 'मृच्छकटिक' नाटक में मदनिका, नटी और कुंभीलका की भूमिका निभाई थी। केलकर इस बात पर ध्यान दिए बिना नहीं रहते कि दर्शकों के अनुसार मदनिका अपनी स्वामिनी वसंतसेना की अपेक्षा अधिक सुन्दरी थी।

उनके पूना आने के बाद अनेक वर्षों तक प्लेग का प्रकोप हर साल होता था। केलकर इस तथ्य का सटीक वर्णन करते हैं कि कैसे प्लेग आने पर लोग शहर के बाहरी हिस्सों में आ बसते थे और छोटे-छोटे समूहों में रहते थे। जो इस तथ्य का अनुभव कर चुके हैं वे केलकर के विवरण को रुचि और सहमति के साथ पढ़ेंगे।

१९०६ के बाद केलकर की सार्वजनिक व्यस्तता बढ़ गई। वे उसी साल प्रारम्भ की गई मराठी साहित्य परिषद् के संयुक्त सचिव हो गए। उनके संग्रहीत किए गए अनेक ऐतिहासिक दस्तावेजों के लिए स्थायी स्थान भी मिल गया। यह भारत इतिहास संशोधक मंडल की प्रेरणा सिद्ध हुआ जिससे केलकर अपने जीवन भर जुड़े रहे थे। लोग उनको पूना के उभरते हुए व्यक्तित्व के रूप में देखने लगे और आगामी वर्षों में केलकर ने उनकी आशाओं को उचित सिद्ध कर दिया।

'केसरी' के जयन्ती वर्ष १९३० में केलकर ने कुछ ऐसा काम किया जो उनके चरित्र पर भरपूर प्रकाश डालता है। १९२० में महाराष्ट्र की जनता ने तिलक को एक थैली भेंट की थी जिससे तिलक किरौले केस का व्यय वहन कर सकें। थैली स्वीकार करते हुए तिलक ने दर्शकों से कहा कि थैली भेंट करके उन्होंने व्यवहारतः तिलक को खरीद लिया था और वे अपना शेष जीवन उनकी सेवा में ही बिताएंगे। अंत में उन्होंने कहा था, 'किसी व्यक्ति के लिए धन उधार लेने की आवश्यकता होना एक दुखद बात है और मैं इस लेन-देन को कभी नहीं भूलूंगा।'

केलकर ने इस शब्दों को याद रखा और फैसला किया कि कभी वे इस ऋण को चुका देंगे। १९३० में यह अवसर आया। तब तक केसरी की आर्थिक स्थिति बहुत सुधर चुकी थी बचत के पैसे से केलकर ने तीन लाख रुपयों का एक सार्वजनिक ट्रस्ट बनाया जिसके ब्याज के पैसों से महाराष्ट्र भर के सार्वजनिक संस्थाओं के क्रिया-कलापों में सहायता की जानी थी। उन्होंने कहा था, 'मैं इस तथ्य को कभी नहीं भूला कि तिलक को थैली भेंट करके लोगों ने 'केसरी' को बचा लिया था और इस ऋण को चुकाना पिता के प्रति पुत्र की जिम्मेदारी का अंग था।'

बेबाक स्पष्टता के साथ केलकर अपने गुणों और दोषों का मूल्यांकन करते हैं अपनी क्षमताओं के बारे में लिखते हुए वे कहते हैं: मुझे जो प्रसिद्धि या सफलता मिली है वह मेरी क्षमताओं से बहुत ज्यादा है। मैं एक साधारण प्रतिभा का

व्यक्ति हूँ, हो सकता है हज़ार में एक लेकिन दस हजार में एक कदापि नहीं।'[1]

अपने समकालीन तिलक, अरविंद, मोतीलाल बोस, नटरजन, सी० वाई० चिंतामणि, कोल्हटकर और खाडिलकर से अपनी संपादकीय प्रतिभा की तुलना करते हुए वे स्वीकार करते हैं कि उनमें से प्रत्येक के पास सुलभ एक नए क गुण का वे अपने में अभाव पाते थे। 'मैं प्रत्येक समस्या के उचित-अनुचित पक्ष का अध्ययन करता हूँ और उसे सामान्य पठक के लिए स्वीकार्य बनाने का प्रयास करता हूँ। चूंकि उग्रवादी विचारों की क्षमता मुझमें नहीं है, इस लिए मेरे लेखन में जोशखरोश का अभाव है। एक आदर्शवादी होते हुए भी मैं प्रत्येक आदर्श की सीमाएँ जानता हूँ मैं दूसरे पक्ष को भी उचित प्रतिनिधित्व देने के लिए अति उत्साहित रहता हूँ। इस प्रकार मेरा लेखन त्रुटियों और श्रेष्ठ गुणों का सम्मिश्रण होकर उत्तम नहीं हो पाता। लेकिन मैंने प्रत्येक श्रेष्ठ कार्य को अपना वेहिचक समर्थन दिया है और जान-बूझकर अनुचित वर्ताव करने से बचा हूँ।' (पृष्ठ ९६६)

अपने राजनीतिक क्रियाकलाप के बारे में लिखते हुए केलकर कहते हैं :

'राजनीति के क्षेत्र में अनेक लोगों के बारे में मैं सोचता हूँ जो मुझसे अत्यधिक श्रेष्ठ हैं। प्रत्येक राजनीतिक आंदोलन पर मैं इस दृष्टि से विचार करता हूं कि अपनी व्यक्तिगत क्षमता से मैं उसमें कितना भाग ले सकता हूं और उस उद्देश्य के लिए मैं कितना बलिदान कर सकता हूं। जो मैं स्वयं नहीं कर सकता, वह दूसरों को करने के लिए कहने से मैं बहुत बचता हूं। जो अपने बलिदान और कष्टों की कोई सीमा नहीं बनाते, वही जनता के वास्तविक नेता हैं और उनका मैं सबसे अधिक सम्मान करता हूं। लेकिन कुछ ऐसे लोग भी हैं जो अपनी सीमाओं पर ध्यान दिए बगैर दूसरों को कोसते रहते हैं। ऐसे लोगों के लिए मेरे दिल में सिर्फ नफरत है। मैं बड़ी स्पष्टता के साथ स्वीकार करूंगा कि मुझमें आवश्यक प्रतिभा, बलिदान और अथक श्रम की क्षमता का अभाव है। यह सच है कि मैं महत्वाकांक्षी नहीं हूं। लेकिन महत्वाकांक्षा का अच्छा और बुरा दोनों ही प्रकार अर्थ हो सकता है।' (पृष्ठ ९६८)

अपने आलोचकों को जबाब देते हुए केलकर आलोचना में निहित असजग प्रशंसा भाव को लक्षित कर लेते हैं। एक आलोचक के अनुसार 'केलकर की लेखनी के जादू ने सम्पूर्ण महाराष्ट्र को वश में कर लिया है।' केलकर कलम की ताकत की इस प्रशंसा की ओर संकेत करते हुए इस आलोचना का खंडन करते हैं। वे कहते हैं, 'यह सच है कि मैं आराम और शांतिपूर्ण जीवन का शौकीन हूँ। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि मैं निठल्ला हूं। मुझमें कठिन श्रम की अत्यधिक

---

१. पृष्ठ ९६७

क्षमता है। मेरे द्वारा किया गया समस्त लेखन और अनेक सार्वजनिक संस्थाओं में मेरा निकट सम्बन्ध मेरे इस दावे की पुष्टि करेंगे।' (पृष्ठ ९७७)

वे लोगों के श्रद्धाभाव का वस्तुगत मूल्यांकन करते हैं। 'जो धर्म, राजनीति या सामाजिक मामलों में मध्यमार्ग का अनुसरण करते हैं, उनके लिए लोकप्रिय जननेता बन पाना हमेशा कठिन होगा। लेकिन एक ईमानदार व्यक्ति पर्याप्त ख्याति अर्जित कर सकता है, यदि वह उद्यमी, निःस्वार्थी और देशहित के प्रति सचेत है। मैं जीवन के किसी भी क्षेत्र में प्रथम श्रेणी का व्यक्ति होने का दावा नहीं करता। द्वितिय श्रेणी शायद ज्यादा उपयुक्त होगी लेकिन यदि मुझे तृतीय श्रेणी में रखा जाए तो भी मुझे कोई शिकायत नहीं होगी क्योंकि अन्य लोगों की राय के बावजूद मैं मूल्यांकन के लिए अपना स्वयं का आधार रखता हूँ।' (पृष्ठ ९८९)

अनेक लोगों के लिए यह आश्चर्य की बात है कि इस पृष्ठभूमि के साथ केलकर तिलक के आजीवन मित्र कैसे बने रहे। लेकिन शायद इन्हीं गुणों के कारण केलकर वे सफलताएँ प्राप्त कर सके। उन्होंने तिलक के प्रसंग में अपने को शून्य की स्थिति में नहीं ला दिया जैसा कि महादेव भाई और गाँधी के सम्बन्ध में हम देखते हैं। तिलक ने एक बार 'केसरी' के लिए एक समकालीन सामाजिक विषय पर लेख लिखा। वे सोचते थे कि इसमें व्यक्त विचार 'मराठा' में केलकर द्वारा व्यक्त विचारों से मेल नहीं खाएँगे। इसलिए तिलक ने केलकर से वह लेख देखकर आवश्यक परिवर्तनों का सुझाव देने के लिए कहा। केलकर की प्रतिक्रिया उनके चरित्र के अनुरूप थी। उन्होंने जवाब दिया कि चूंकि तिलक ही अखबार के संपादक हैं, इसलिए उसमें उनके विचारों को प्रमुखता पाना उचित ही है। यदि उन पर आलोचना की बौछार हुई, तो वे (केलकर) अपना ध्यान रखेंगे।

अपनी आत्मकथा के पूर्वकथन में केलकर लिखते हैं, 'मानवजाति को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है: आदेश करने वाले, आदेश पालन करने वाले और अपने स्वतंत्र विवेक का प्रयोग करने वाले। पहले दो की समस्या अपेक्षाकृत सरल है। लेकिन तीसरी श्रेणी के लोग न तो आदेश करना चाहते हैं और न पाना चाहते हैं। वे अपनी स्वतंत्रता की ही तरह दूसरों की स्वतंत्रता का भी सम्मान करते हैं। लेकिन विवेक की यह स्वतंत्रता सत्ता को ठुकराने, उपेक्षित होने और पीछे छूट जाने के लिए तैयार रहने की मांग करती है। कुछ लोग सत्ता पाने और लोगों पर शासन करने की आकांक्षा रखते हैं। कुछ ऐसे लोग भी हैं जो सभी के प्रति दयालु और विनम्र होना पसंद करते हैं। वे अपनी सहज अच्छाई और विचार-शक्ति से दूसरों का आदर पाने को वरीयता देते हैं। मेरा सम्बन्ध इस दूसरी श्रेणी से है।'[1]

---

१. आत्मकथा पृष्ठ ९८१-९८२

केलकर संभवत: उस वर्ग के अंतिम और पूर्णतम प्रतिनिधि थे जो अब खत्म हो चुका है या तेजी से खत्म हो रहा है। व्यक्तिगत निष्ठा, सार्वजनिक व्यवहार में ईमानदारी, सादा जीवन, पुस्तकों, संगीत और जीवन की सभी श्रेष्ठताओं के प्रति आदर और प्रेम, सामाजिक दायित्व की भावना, परिवार, मित्रों और देश के प्रति निष्ठाभाव और सफलता और पूर्णता के बोध के साथ सभी दुनियावी कारबार से अलगाव इस वर्ग की विशेषताएँ थीं। अपने अनेक गुणों से केलकर ने अपने को इस वर्ग का श्रेष्ठतम प्रतिनिधि बना लिया। जब उन्होंने खुले दिल से मृत्यु का स्वागत किया, लोगों ने इस प्रकार शोक व्यक्त किया जसे परिवार का कोई प्रिय सदस्य, एक साथ ही पथनिर्देशक, मित्र और दार्शनिक खो गया हो।

उपन्यासकार, कथाकार, कवि और नाटककार

'केसरी' का संपादन छोड़ने के बाद केलकर ने अपने अवकाश को अपने प्रिय व्यसन —लेखन में लगाने का फैसला किया। उनकी महत्त्वाकांक्षा थी प्रत्येक साहित्य-रूप में लिखने और इस प्रकार 'केसरी' को अपनी साहित्यिक प्रतिभा से लाभान्वित करने की।

इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर उन्होंने 'नवलपुरचा संस्थानिक' नवलपुर का राजा-उपन्यास लिखा। अपनी आत्मकथा में वे लिखते हैं: 'उपन्यास भी उतना ही महान और सम्मानित साहित्यिक रूप हो सकता है जितना कि निबंध। मैंने सोचा कि 'केसरी' जैसे विख्यात पत्र के स्तंभों में किसी उपन्यास का आना आपत्तिजनक नहीं होना चाहिए, यदि इसके विषय, भाषा और गठन में उस पत्र के उच्च स्तर को ध्यान में रखा गया हो। इसीलिए मैंने यह प्रयोग करने का फैसला किया और उपन्यास १९३४ में 'केसरी' में धारावाहिक प्रकाशित हुआ। उपन्यास की विषय वस्तु, एक भारतीय राजतंत्रीय राज्य की राजनीति, रचनात्मक से ज्यादा प्रासंगिक थी मैंने इसमें नायक और नायिका का प्रेम जोड़ दिया लेकिन अपनी भाषा में मैं बहुत संतुलित रहा और कथानक में एक भी अवांछित शब्द घुसने नहीं दिया। मेरे विचार से इसने बड़ी सीमा तक दोहरा उद्देश्य सिद्ध किया—भारतीय राजनीति पर विचार-विमर्श के साथ-साथ पाठकों का मनोरंजन भी किया।' (पृष्ठ ८११)

निश्चय ही पाठक आनंदित हुए होंगे लेकिन उन कारणों से नहीं जो केलकर के दिमाग में थे। केलकर के विचारों में यह दुराग्रह दिखाई देता है कि गल्प और नाटक तब तक उल्लेखनीय नहीं बनते जब तक कि उनमें भावुकता का पुट न हो अपने बचपन में हम प्रिंस डाक्सन और 'अरेबियन रातों' की कहानियाँ मजे ले लेकर पढ़ा करते थे। खलीफा हारुंलरशीद की तरह केलकर का नायक भी अंधेरी रातों में नवलपुर की सड़कों पर घूमता रहता है। एक दूसरे चरित्र पर

हत्या करने का आरोप लगाया गया है। और वह न्याय की दृष्टि से बारह वर्ष तक ओझल रहता है। चूंकि जाहिर हो जाने पर उसके गिरफ्तार हो जाने की आशंका है, इसीलिए उसकी मां और बहन उसको छुपाने के लिए घर के अन्दर तहखाना बनवा देती हैं। भ्रष्ट, साजिश करने वाला और दुष्ट दीवान, बूढ़ा और अपनी जवान बीवी पर शक करने वाला रिटायर्ड राजकीय कर्मचारी, राजकुमार के साथ हमदर्दी रखने वाला राजनीतिक एजेंट, चालाक, नीच और चालू शिरस्तेदार, कम्युनिस्ट नेता और नाई ये सभी पात्र उपन्यास में आते हैं। सामाजिक सेवाकार्य में रुचि रखने वाली गुणी कन्या भी है जो अंततः राजकुमार के साथ बंध जाती है। कहा जाता है कि उपन्यास या नाटक में प्रेमी बात खत्म हो जाने पर चुंबन आरंभ कर देते हैं। लेकिन केलकर अपनी भाषा में इतने संयमित और प्रस्तुतिकरण में इतने सटीक हैं कि प्रेमियों की बातचीत कभी बंद नहीं होती।

राजकुमार का एक दोस्त है मनोहर, जो उसके व्यक्तिगत सचिव की भूमिका निभाता है। मनोहर के पास ऐसे प्रमाण आ गए हैं जो संदेह के परे यह सिद्ध कर देते हैं कि दीवान विश्वासघाती और भ्रष्ट दोनों ही है। यह स्थिति सामने आने पर दीवान यह बताकर अपने को बचाना चाहता है कि चूंकि प्रमाण एक व्यक्तिगत पत्र के रूप में हैं, इसीलिए मनोहर के विरुद्ध चोरी का आरोप लगाया जा सकता है। लेकिन सीधी कार्यवाई में विश्वास रखने वाला मनोहर अपनी जेब से रिवाल्वर निकाल लेता है। दीवान इतना डर जाता है कि अपना अपराध स्वीकार करते हुए एक वक्तव्य पर हस्ताक्षर करता है और नवलपुर छोड़कर भाग जाता है।

केलकर ऐसे परम्परावादी हैं जो सामाजिक सुधार में आस्था रखते हैं। इस लिए उपन्यास की नायिका, गुणवती विमला, को आधुनिक फिर भी अति आधुनिक रूप में नहीं पेश किया गया है। वह कीमती साड़ियां पहनती है और पूरी तरह ढकी रहती है। साड़ी के नीचे वह सादे किनारों वाला बिना तड़क-भड़क सिल्क का ब्लाउज पहनती है। वह रबर के सैंडल और कभी-कभी जूते भी पहनती है लेकिन नंगे पैर चलने में भी उसे कोई एतराज नहीं। जल्दी में होने पर अपने केशों में वह जूड़ा बांध लेती है अन्यथा अपनी मां से केशविन्यास करवाती है और फिर अपने साथ आधुनिकता का नवीनतम प्रतीक, रूमाल भी रखती है। जब कभी हम उससे मिलते हैं, आधुनिकता का यह अनिवार्य प्रतीक हमेशा दिखाई पड़ता है।

राजकुमार भी सामान्य से अलग है। वह अपनी जनता को संविधानिक सरकार प्रदान करना चाहता है और स्वयं राज्य का संविधानिक प्रमुख बने रहना चाहता है। जब जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों के अधिकारों पर विचार

विमर्श चल रहा होता है, केलकर एक चरित्र से ऐसे शब्द कहलाते हैं जिनसे आश्चर्यजनक रूप से मौजूदा समय की गूंज आती है। यह पात्र कहता है,' वर्तमान जनतांत्रिक सरकार द्वारा प्रयोग किया जाने वाला सचिवालय की जिम्मेदारी शब्द खोखला है। जो कोई भी मंत्री बन जाता है अपने पद का अस्थायी इजारेदारी के रूप में देखता है। कितना भी अक्षम वह क्यों न सिद्ध हो जाए, कितना भी सार्वजनिक कोष वह क्यों न उड़ा ले, उसके कार्यकाल के दौरान उसे कुर्सी से हटा पाना अत्यंत कठिन है। लेकिन यह जानते हुए कि एक दिन वह हटा दिया जाएगा, वह उचित-अनुचित सभी साधनों से इतना पैसा जुटा लेता है कि बाद के जीवन में वह वैभव में भले न डूबा रहें, कोई न कोई व्यवसाय शुरू करके सुखी रह सकता है।'

उपन्यास का अंत इस तरह के उपन्यासों की तरह ही होता है। राजकुमार उस गुणी कन्या से विवाह कर लेता है, कन्या का पिता अपनी जवान बीवी पर शक करना बन्द कर देता है, उसका भाई जो कानून की नज़र में फरार था नवलपुर में शांति और व्यवस्था का रक्षक बन जाता है मनोहर, राज्य का मुख्यमंत्री बन जाता है दुष्ट दीवान हमेशा के लिए निकाल दिया जाता है और राजनीतिक एजेंट राजकुमार को अपनी जनता का एक सही संविधान प्रदान करने वाला पहला राजा होने के लिए बधाई देता है। हमारे लिए करने को इसके अलावा और कुछ नहीं बचता कि इन भाई लोगों से उन्हें शुभकामनाएँ देकर छुट्टी ले लें।

केलकर के दूसरे उपन्यास 'बलिदान' में बौद्ध भिक्षुओं और भिक्षुणियों के एक सम्प्रदाय और शक्ति के उपासकों के बीच संघर्ष एवं द्वन्द का चित्रण है पृष्ठ भूमि है शाक्तों का महत्त्वपूर्ण धार्मिक केन्द्र भैरवपुर। भैरवपुर का राजा बौद्ध धर्म की ओर अत्याधिक झुकाव रखता है। कथानक में मोड़ तब आता है जब शाक्त राजा के विरुद्ध बौद्ध धर्म के प्रति उसकी पक्षधरता के कारण एक साजिश करते हैं।

स्वयं शाक्त संप्रदाय इस भावुक नाटक के लिए काफी संभावनाएं प्रदान करता है। उपन्यास की एक पात्रा, नलिनी के साथ एक शाक्त साधु ने छेड़खानी की है। वह उस साधु को भैरवपुर में देखती है और उससे बदला लेने की योजना बनाने लगती है। शाक्त साधु रुद्रभट्ट देवी काली को बलि देने के लिए अपना शिशु अर्पित करने हेतु शहर के एक बनिए को राजी कर लेता है। बच्चा अभी दुधमुंहा है। जब बच्चे की जंत्री में मिलने वाले कागज़ से उसके जन्म का रहस्य खुलता है तो पत चलता है कि वह राज्य के एक मंत्री का पुत्र है, जो शाक्तों की मदद से राजा को हटाने का षड्यंत्र कर रहा है।

राजा की बौद्ध समर्थक नीतियों के प्रति विरोध प्रदर्शन के लिए शाक्त अपनी कठिनाइयां गिनाते हुए एक मांगपत्र राजा को देते हैं। इनके लिए वे एक सम्मे-

लन आयोजित करते हैं जिसमें सभी गैरबौद्ध सम्प्रदायों को निमंत्रित किया जाता है। इस सम्मेलन का विवरण देने में केलकर उपन्यास के दो अध्याय लगा देते हैं। चूंकि राजनीतिक क्षेत्र में उन्होंने ऐसे अनेक सम्मेलनों में भाग लिया था, केलकर इस सम्मेलन का बहुत यथार्थ वर्णन करते हैं। लेकिन मुख्यकथा में इसकी प्रासंगिकता समझने में हम असफल रहते हैं।

उपन्यास का अंत एक उच्च नाटकीयता के साथ होता है। एक बौद्ध भिक्षुणी शाक्तों के हाथ पड़ गई है जिसे वे देवी काली को बलि देने के लिए तैयार हो रहे हैं। वह ठीक समय पर बचा ली जाती है। नलिनी उस शाक्त साधु की हत्या करके अपना बदला ले लेती है जिसने उससे बुरा सलूक किया था। फिर वह अपने को नदी में डुबो लेती है क्योंकि वह अपने जीने का कोई और उद्देश्य नहीं पाती।

(२)

इन उपन्यासों के अतिरिक्त केलकर ने अनेक लघु कथाएं लिखीं। उनमें से कुछ अन्योक्तिपरक हैं और हमारी सामाजिक राजनीतिक समस्याओं से सम्बन्धित हैं। श्री शारदा ने बाल विवाह रोकने के लिए असेम्बली में बिधेयक पेश किया था। उपरोक्त शारदा और इसी के नाम के एक मराठी नाटक के नाम की अनुरूपता का फायदा उठाते हुए केलकर नाटक की नायिका के ज़रिए उपरोक्त विषय पर अपने विचार सामने लाते हैं। एक अन्य नाटक में वे गांधी के राजनीतिक विचारों का मज़ाक उड़ाते हैं। एक अन्य नाटक में वे जुए की आदत और इसे रोकने के कानूनी प्रयास पर बहस चलाते हैं। एक कहानी में केलकर भविष्य की एक झलक लेते हैं और भारतीय भूमि से अंग्रेजों के अंतिम प्रस्थान के बारे में लिखते हैं।

किसी भी गल्पसाहित्य में, वह उपन्यास या लघुकथा कुछ भी हो, तकनीक रूप नाटकीय कथानक और रुचियों एवं चरित्रों का संघर्ष होना चाहिए। जब केलकर पांच या दस पृष्ठ लिखते हैं तो यह लघुकथा बन जाती है, जब वे पांच सौ पृष्ठ लिखते हैं तो वह उपन्यास होता है। उनका मुख्य सरोकार कथानक या तकनीक नहीं है। वह है लिखने का परिमाण—लघुकथा के लिए इतने शब्द और इतने शब्द उपन्यास के लिए।

(३)

केलकर के नाटकों पर दृष्टि डानने के पहले हम उनके काव्यप्रयासों की एक झलक लेंगे। अपने काव्यसंग्रह, 'पद्यगुच्छ' की प्रस्तावना में केलकर लिखते हैं कि अनेक कविताएँ खाली समय बिताने के लिए, व्यक्तिगत मनोरंजन के लिए लिखी गई थीं। लेकिन अपनी आदत के अनुसार वे शिक्षक भाव अपना लेते हैं और आठ विभिन्न विशेषताएँ गिनाते हैं जो कविता को गद्य से अलग करती हैं। उनके

अनुसार संक्षिप्तता, जो वाग्विदग्धता की आत्मा है, कविता और गद्य के बीच फर्क करने वाला एकमात्र कारक भी है।

इसके बाद केलकर इस सवाल का जवाब देते हैं कि क्यों किसी भी साहित्य में गद्य-लेखन की तुलना में काव्य-लेखन बहुत कम होता है। ऐसा इसलिए है कि सामान्यतः जीवन में मनुष्य को अधिकतर गंभीर होना पड़ता है और चूंकि कविता हल्के फुल्के मनोरंजन की चीज़ है, इसलिए उसकी रचना भी कम होती है। मेरे गद्य संकलन 'गद्यगुच्छ' में दो सौ पृष्ठ है जबकि 'पद्यगच्छ' में सिर्फ सौ। मेरी सबसे पहली कविता १८९२ में लिखी गई थी और नवीनतम १९३५ में। इसका अर्थ है कि तैंतालीस वर्षों में मेरी पद्य रचना सौ पृष्ठों से अधिक नहीं है।' उपरोक्त प्रबन्ध को उचित ठहराने के लिए और बेहतर प्रमाण क्या हो सकता है।

अंत में केलकर हमें यकीन दिलाते हैं कि वे कवि नहीं हैं और उनमें काव्य-प्रतिभा नहीं है। 'मैंने कविता अपने मनोरंजन के लिए लिखी है और पाठकों को भी इसे मनोरंजन के लिए ही पढ़ना चाहिए।'

केलकर न सचमुच कुछ मनोरंजक कविताएं लिखी हैं। उनमें सर्वश्रेष्ठ है। 'विलायतेच्या यात्रेची तयारी।' अपनी आत्मकथा में केलकर लिखते हैं, 'मैंने यह कविता इंग्लैंड से वापसी यात्रा में सिर्फ समय काटने के लिए लिखी थी। इसे पूरा करने में मुझे चार दिन (७ से १० नवम्बर १९१९) लगे थे।'

यह कविता एक फैशनपरस्त भद्रपुरुष, एक पाकशास्त्री और अंग्रेज़ी आचार-विचार से परिचित एक व्यक्ति से आरंभ होती है। वे सभी केलकर को क्या करना चहिए, इसकी सलाह देते हैं। इन विशेषज्ञों के बाद विदेश यात्रा के लिए उन्हें तैयार करने हेतु आते हैं मित्र और सम्बन्धी, एक डॉक्टर और एक धर्म-गुरु। अनुवाद में इसका व्यंग्यवैचित्र्य ला पाना असंभव है लेकिन यहां कुछ उदा-हरण दिए जाते हैं : फैसनपरस्त सज्जन उन्हें सबसे कीमती कपड़े चुनने और उसे एक अच्छे दर्जी, भरसक अंग्रेज, से सिलाने की सलाह देते हैं। 'पहले कपड़े और तब दाड़ी मूंछ की सफाई। सभ्यता के सारे गुर इन दो चीज़ों में निहित हैं।' उन्हें खाना क्या चाहिए ? 'सुबह उबले अंडे, दोपहर को छोटे मुर्गे के गोश्त और शाम को मुर्गे के मां-बाप का गोस्त। इस प्रकार मृतक के लिए शोक मनाने वाले कोई नहीं बचेगा। दार्शनिकों ने ठीक ही कहा है, केवल ज़िन्दा ही दुःख व्यक्त कर सकते हैं, मरे हुए नहीं।' उन्होंने एक और व्यंग्य कविता 'हमारा नया राज' लिखी 'ईश्वर की कृपा से हमने अपने राज्य को चाहा था, वैसा बना लिया है। डाक विभाग का संचालन इस समय धोंधे कर रहे हैं। शिकायत का सवाल ही नहीं उठता क्योंकि हर दस साल में एक डिलीवरी होती है।'

केलकर संगीत में रुचि रखते थे। मराठी भाषा में भी उनकी उतनी ही रुचि थी। उनकी महत्वाकांक्षा थी कि हिन्दुस्तानी संगीत को मराठी आवरण में पेश

करें। इसलिए उन्होंने हिन्दुस्तानी रागों के उपयुक्त अनेक मराठी गीत लिखे। केलकर ने कभी भी दूसरों से उस चीज़ की अपेक्षा नहीं की जो वे स्वयं नहीं कर चुके थे या कर सकते थे। चूँकि उन्होंने मराठी गायकों को मराठी गीत हिन्दुस्तानी शैली में गाने की सलाह दी, उन्होंने सोचा कि उन्हें इसके लिए मिसाल पेश करनी चाहिए। मराठी भाषा और हिन्दुस्तानी रागों का संयोजन कयामत ही थी। इसको सफल बनाने के केलकर के प्रयासों के बारे में जो सबसे सहृदय टिप्पणी हो सकती है, वह यह कि इसके बारे में चुप ही रहा जाए।

(४)

१९२३ में केलकर ने न्यू पूना कॉलेज में एक भाषण किया। विषय था 'मेरे नाटक' (संग्रहीत रचनाएं, साहित्य खंड, पृष्ठ ४१४)। उन्होंने कहा, 'मैंने कुल आठ नाटक लिखे हैं। इनमें से लोग सिर्फ छः को याद करते हैं। 'नवरेदवाची जोडगोली' शेरिडान के नाटक 'द राइवल्स' का अनुवाद है। 'सरोजिनी' एक बंगाली नाटक का अनुकूलन है जिसे मैंने बंगाली भाषा पर, जिसे मैंने सतारा में १८९६ में लिखना शुरू किया था, अपने अधिकार की परिक्षा के लिए लिखा था इसके बाद १९१२ तक मैंने कोई नाटक नहीं लिखा। उस वर्ष मैंने एक ऐतिहासिक नाटक 'तात्याचे बंड' (ढोंगी का विद्रोह) लिखा। 'चन्द्रगुप्त' एक रूमानी नाटक है। चन्द्रगुप्त और चाणक्य इन दो चरित्रों के अलावा अन्य कुछ भी इतिहाससम्मत नही है। 'कृष्णार्जुन युद्ध' एक कामदी है। इसको एक पुराण कथात्मक नाटक भी कहा जा सकता है। 'अमात्य माधव' का विचार लार्ड लिटन का 'रिचेल्यू' पढ़ने के बाद आया था। 'वीर विडंबन' १९१८ में लिखा गया। यह अपने प्रवास के एक वर्ष के अज्ञात जीवन में पांडवों द्वारा सहे गए कष्टों पर आधारित है। विशेषकर अर्जुन मेरे ध्यान में था जिसे पूरे एक साल तक नारी वेश में छुपे रहना पड़ा। मेरा अंतिम नाटक 'भानुदास' नाटक से अधिक प्रहसन है। इस प्रकार हम देखते हैं कि केलकर के नाटकों में तीन अनुवाद या अधिकांशतः अनुवाद, एक ऐतिहासिक नाटक, एक रोमांस, एक कामदी, एक व्यंग्य और एक प्रहसन था। इन पाँच नाटकों में केलकर पाँच विभिन्न कथानकों पर काम करते हैं।

फिर भी मराठी नाटक में केलकर का योगदान नगण्य माना जाना चाहिए। श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर जिनकी नाट्य तकनीक ने उनको अत्यधिक प्रभावित किया था, की संग्रहीत रचनाओं की प्रस्तावना में केलकर कहते हैं, बहुत से लोगों के विचार से जो नाटक मंच पर सफल हो सकता है, उसे ही नाटक कहा जाना चाहिए। लेकिन नाटक अपने आपमें एक साहित्य रूप है और साहित्य के रूप में इसके मूल्य पर सवाल नहीं उठाया जा सकता।' (संग्रहीत रचनाएं, खण्ड १०, पृष्ठ ४८४)। उनकी असफलता का यह एक कारण हो सकता है। दूसरे कारण हम उल्लिखित भाषण से ही जान चुके हैं। उसमें केलकर कहते हैं, 'मैं कोई नाट्य

कार नहीं हूँ जिसके नाटक अच्छे रंगमंच का निर्माण करते हैं। मुझमें इस बुनियादी योग्यता का अभाव है : रूमानी भावनाओं की क्षमता मुझमें नहीं है। किसी सफल नाटकार के लिए आवश्यक, भावुक उच्चबिंदु के सृजन की क्षमता मुझमें नहीं है, उपयुक्त क्षणों में सफल कथानक बुनने या व्यंग्य पूर्ण दृश्य जोड़ने में भी मैं सक्षम नहीं हूँ।'

इन अभावों के बावजूद 'मेरी भाषा सरल और आभूषित है, कथानक रोचक है, प्रेम को संयमित रखा गया है। किसी भी नाटक में ऐसी पृष्ठभूमि नहीं है जो अनियंत्रित प्रेम दृश्यों की गुंजायश पैदा करें। इससे नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत की यह शर्त पूरी होती है कि नाटक को इतना पवित्र होना चाहिए कि परिवार के सभी सदस्य, पिता और पुत्र, पति और पत्नी एक साथ उसे देख सकें। मेरे खयाल से यह बहुत महत्वपूर्ण विचार है। यदि इस नियम का दृढ़ता से पालन किया जाए तो रंगमंच की अधिकांश वर्तमान आलोचना खत्म हो जाएगी। मैं बुद्धि को भावना से सफलता पूर्वक जोड़ सकता हूँ मेरे नाटकों की प्रतिकूल आलोचना नहीं हुई है। मेरे गीत आसानी से समझने लायक हैं। उनमें से कुछ को तो लोग उच्च स्तर की कविता मानते हैं।'

'तात्याचे बंड' को छोड़कर केलकर का कोई भी नाटक मंच पर सफल नहीं हुआ। यह नाटक मराठा इतिहास की एक प्रसिद्ध घटना पर आधारित है। १७६१ के पानीपत युद्ध में सदाशिव राव भाऊ पेशवा को अपनी जान खोनी पड़ी। उनका मृत शरीर पाया नहीं जा सका जिससे लोग उनके जिन्दा होने की आशंका करते रहे। इसका लाभ उठाकर मथुरा का एक आदमी (नाटक में सुखनिधान) सदाशिव राव का ढोंग करके महाराष्ट्र आया। पेशवाओं के प्रसिद्ध मंत्री नाना साहब फड़नीस को भाऊ साहब की मृत्यु में ज़रा भी संदेह नहीं था लेकिन भाऊ साहब की पत्नी पार्वती देवी उनके ज़िन्दा होने में विश्वास करती थी। वे इस गलतफहमी में थीं कि नाना के आदेश से जिस आदमी को रत्नागिरि जेल में बंद कर दिया गया है, वह उनका पति ही था।

यह स्थिति न केवल राज्य के लिए बल्कि पेशवाओं की ख्याति के लिए भी अत्यंत घातक थी। इस आधारभूत संघर्ष की जो घातक और नाटकीय दोनों ही है, नानासाहब नाटक के दूसरे सर्ग के तृतीय दृश्य में इस प्रकार व्याख्या करते हैं :

> 'अतीत में मुझे अनेक घातक साजिशों का सामना करना पड़ा है जिन्हें मैंने अंकुरावस्था में ही खत्म कर दिया है। लेकिन मैं आशा नहीं करता था कि यह ढोंगी स्थिति को इस खतरनाक सीमा तक ले आएगा। दुर्भाग्य से पेशवा परिवार की एक लोकप्रिय और सचमुच साहसी महिला भी इसमें फंस गई है। इसलिए इस षड्यंत्र का खात्मा और मुश्किल हो गया है। पार्वती बाई साहब की भावनाओं को ध्यान में रखते हुए मैंने उस ढोंगी के

विरुद्ध कोई कड़ी कार्रवाई नहीं की जिसका परिणाम हुआ है कि मिट्टी की गुड़िया ने अब इस्पात की नसें हासिल कर ली हैं।'

यह दुःखांतक उत्कर्ष वाला महान् नाटक है। ग्रीक त्रासदियों की तरह इसके चरित्र भी उच्च पदासीन व्यक्ति हैं। चतुर राजनयिक नाना फड़नीस को पार्वती बाई से मुकाबला करना है जो, जैसाकि तृतीय सर्ग के दूसरे दृश्य से स्पष्ट है, उनकी ही टक्कर की बौद्धिक क्षमता रखती हैं।

महान नाट्य संभावनाओं से पूर्ण इस कथानक का केलकर द्वारा निर्वाह निराशाजनक ही है। सुखनिधान, जो मथुरा से चलकर मराठा राज्य प्राप्त करने आया है, बुद्धिरहित, साजिश में अक्षम और चारित्रिक शक्ति से शून्य मालूम पड़ता है। प्रसिद्ध राजनयिक नानासाहब, जिनसे उन महान् चुनौती का सामना करने की आशा की जाती थी, दब्बू और अकर्मण्य चरित्र के रूप में सामने आते हैं। नाटक में एक ही विशेष कार्य वह कर पाते हैं, वह रतनागिरि जेल के रक्षक को गिरफ्तार करवा देना जिसने उनके आदेश के विरुद्ध सुखनिधान को छोड़ दिया था। लेकिन पार्वतीबाई के सामने ही यह करते हुए वह न तो राजनीतिक सूक्ष्मता, न कूटनीति और न ही अभागिनी महिला की भावनाओं के प्रति सम्मान दिखाता है। और फिर वह अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए ईश्वर की कृपा पर निर्भर करता है। संयोगवश ही वह हैवती, और उससे अधिक, सुखनिधान की बीबी अमला से टकराता है। उनका एक साथ मंच पर आना संदेह त्याग की मानवीय क्षमता के सामने उतना ही बड़ा संकट पेश करता है जितना अमला की यह आश्चर्यजनक प्रार्थना की नाना उसके पति की तलाश कर दें। लेकिन उससे मिलते ही नाना की आंतरिक चेतना में यह बात आती है कि उस ढोंगी का रहस्य खोलने की वह कुंजी हो सकती है। इसलिए वह उस बेचारी औरत की प्रार्थना स्वीकार कर लेता है और अपना वचन बिना कठिनाई के निभाता है। बदले की भावना से पूर्ण इस नाटक में 'अरेबियन रातों' जैसा मनोरंजन और परीकथा में बदल दिया गया इतिहास मिलता है।

इस नाटक में पार्वतीबाई का सबसे अच्छा चरित्रांकन किया गया है। नाना के साथ वाक्युद्ध में वह अपने को प्रतिद्वन्द्वी के मुकाबले का ही सिद्ध कर देती है। (सर्ग ३, दृश्य २) एक कुलीन परिवार में जन्मी महिला के रूप में वह पूना से भागने से इनकार कर देती है। स्पष्टतः अपने प्रतिद्वन्द्वी के सामने असहाय होकर वह उससे एक वचन लेने में सफल हो ही जाती है कि कोई अंतिम कदम उठाने के पहले वह उस आदमी को, जिसे वह अपना पति होने की आशा करती है, उसके सामने ले आएगा। पेशवा परिवार की ख्याति के अनुकूल ही वह आचरण करती है। चतुर, राजनीति समझने वाली और श्रेष्ठतम समकालीनों के विरुद्ध अपना मत रखने की क्षमता वाली सिद्ध होती है।

बाजीराव और खुशालराव के चरित्र लाकर केलकर नाटक को स्थानीय रंग देने में सफल होते हैं लेकिन हमें आश्चर्य होता है कि उत्तर भारत की अमला ने किस प्रकार इतनी अच्छी मराठी सीख ली। कुल मिलाकर हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि नाटक की संभावनाओं का भरपूर उपयोग करने में केलकर असफल रहे हैं। अपनी ही स्वीकृति के अनुसार, केलकर भावुक नहीं हैं, इतने आलोचना-प्रधान हैं कि रचनात्मक नहीं हो सकते और अपने को मुक्त छोड़ देने और चरित्रों के बीच खो जाने में सर्वथा अक्षम हैं। वे मध्यम कोटि के, सजग, संतुलित व्यक्ति हैं और हमेशा पिता और पुत्र, पति और पत्नी, दरअसल सारे मध्यवर्गीय दर्शक समुदाय के बारे में सोचते हैं जो नाटक देखते हुए थोड़ा रोएंगे, थोड़ा हंसेगे और दैनिक जीवन की ऊहापोह में न मिल पाने वाले थोड़े रोमांस का भी मजा ले लेंगे।

केलकर 'चन्द्रगुप्त' को अपना श्रेष्ठतम नाटक मानते थे। उनके अनुसार यह एक रोमांस है और इसमें चन्द्रगुप्त और चाणक्य को छोड़कर और कोई ऐतिहासिक पात्र नहीं है। नाटक के एक मुख्य चरित्र चन्दनदास ने केलकर से यह कहलाया है 'ईश्वर या राजा के प्रति समर्पण भाव व्यक्ति के अपने चयन पर निर्भर करता है, केलकर कहते हैं, 'और यह नाटक का केन्द्रीय भाव है।' लेकिन नाटक पढ़ने पर हमें ऐसा आभास नहीं होता। इसमें इतने अधिक रहस्य और रोमांस, नकाबपोश चरित्र, पुराने बक्से में बंद रहस्यपूर्ण दस्तावेज, लड़ाई और जादू-टोना है कि शायद ही कोई केन्द्रीय भाव पर ध्यान देने के लिए समय पाता है। सारे नाटक में हमें उस समय के प्रसिद्ध नाटककार में कोल्हटकर और खाडिलकर की मंच सज्जाकला की प्रतिध्वनि मिलती है। हमें शक होता है कि केलकर यह दिखाना चाहते थे कि उन दोनों की भाँति वे भी रहस्य और रोमांस, तलवारों की टक्कर और अंततः सुखद अंत के चित्रण में पटु हैं। चाणक्य नंदवंश का एलानिया दुश्मन है जबकि चंदनदास उनका निष्ठावान अनुचर है। उनकी पुत्री तारिणी चन्द्रसेन से, जो चन्द्रगुप्त ही है, प्यार करती है। चन्द्रगुप्त स्वयं नंदवंश की संतान है, यह रहस्य तब सामने आता है जब चंदनदास के संरक्षण में रखा बक्स खोला जाता है। इसके बाद चाणक्य नंदवंश के प्रत्येक जीवित सदस्य का सफाया करने का प्रण तोड़ देता है। तारिणी को पता चलता है कि चन्द्रसेन और चन्द्रगुप्त एक ही व्यक्ति हैं। सभी गलतफहमियाँ खत्म हो जाती हैं, तारिणी और चन्द्रगुप्त के विवाह के साथ नाटक का सुखद अंत हो जाता है।

केलकर की राय के बावजूद 'कृष्णार्जुन युद्ध' को केलकर का सर्वाधिक संतोषजनक नाटक माना जाना चाहिए। प्रस्तावना में केलककर कहते हैं :

'कृष्ण और अर्जुन की मैत्री प्रसिद्ध है। जो तथ्य नहीं मालूम है वह यह कि एक मौके पर वे दोनों आपस में ही लड़ पड़े थे। इस कथानक पर मेरा

ध्यान तब गया जब पिछले साल (१९१३ में) चित्ताकर्षक थियेटर कम्पनी एक नाटक के लिए मेरे पास आई।'

इस नाटक का गठन सुन्दर है क्योंकि मुख्य चरित्र नारद सारे सूत्र अपने हाथ में रखता है और नाटक में प्रत्येक कार्य उसके द्वारा या उसकी पहल से योजनाबद्ध या कार्यान्वित होता है। कामदी तत्त्व इस तथ्य से आता हैं कि दर्शकों को पता है कि कोई संघर्ष नहीं होगा, कि असंभव स्थितियाँ एक कुशल मस्तिष्क का सृजन मात्र हैं, कि नाटक के चरित्र इस बात से सर्वथा अनभिज्ञ हैं और एक ऐसे संकट पर विजय पाना चाहते हैं जिसका वास्तव में अस्तित्व ही नहीं।

नाटक के आरम्भ में कृष्ण, सत्यभामा, द्रौपदी और अर्जुन पिकनिक के लिए एक रमणीक वन में पहुंचते हैं। उसी समय नारद उपस्थित होते हैं और बातचीत के दौरान यह सिद्धांत प्रतिपादित करते हैं कि वे सभी एक दूसरे को प्यार करते हैं क्योंकि अपने को प्यार करते हैं। वे वक्तव्य के समर्थन में उपनिषद् से उद्धरण देते हैं : 'आत्मानस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।' जब अन्य लोग असहमति व्यक्त करते हैं तो वे इसे सिद्ध करने का दावा करते हैं। यह नाटक का आरंभबिंदु है जो चरमबिंदु पर तब पहुंचाता है जब कृष्ण और अर्जुन लड़ने को उद्यत होते हैं और अंत में समझौता हो जाता है।

केलकर से सहमत हुआ जा सकता है कि उनमें नाट्य प्रतिभा नहीं थी लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि वे थियेटर में सचमुच दिलचस्पी रखते थे। यद्यपि खाडिलकर की तरह उन्होंने अपनी नाटक का मंचन करने वाली कम्पनियों के साथ बहुत समय नहीं दिया, फिर भी नाटक को वे महान् कला मानते थे। नासिक नाट्य सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण में वे हमारे देश में नाटक का मूल स्रोत खोजते हैं और यह सिद्ध करने के लिए अध्याय के अध्याय और अनेक पद्य उद्धृत करते हैं कि प्राचीन भारत में क्यों नाटक को महान् कला माना जाता था। इसके बाद वे बताते हैं कि कैसे यह अन्य कलाओं, संगीत, चित्र, नृत्य, मंचसज्जा, भाषण आदि के विकास में सहायक होता है। वे कहते हैं कि नाटक एक दृश्य कला है और इसका कोई कारण नहीं कि लोग इस कला के प्रस्तावक अभिनेताओं को नीची नज़र से देखें। भाषण के अंत में वे कुछ उपयोगी सुझाव देते हैं। एक है नाटक की औसत लम्बाई कम करने के बारे में। 'सीधे-सादे मनोरंजन के लिए भी नाटक को पांच-छः घंटों तक खींचना ठीक नहीं है।' यह अस्वास्थ्यकर है और दर्शकों और अभिनेताओं दोनों पर ही अनावश्यक तनाव डालता है। कुछेक बार समय की बचत के लिए नाटक को मनमाने तरीके से छोटा कर दिया जाता है जो नाटक की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। फिर वे नाटक में गीत के प्रयोग पर आते हैं। बहुधा दर्शक गीतों का अर्थ नहीं जानते। इससे कथानक का क्रम ही नहीं टूटता बल्कि वह विचार भी जिसे नाटककार जान-बूझ कर गीत के रूप

में रखता है, खो जाता है। फिर वह बचकाना सुझाव देते हैं कि गीत शुरू करने के पहले अभिनेता को गद्य में गीत का विचार स्पष्ट कर देना चाहिए। वे यह नहीं महसूस करते लगते कि इससे भी नाटक की निरंतरता उसी प्रकार टूटती है जिस प्रकार नाटक का एक भाग निकाल देने पर।

थियेटर के क्षेत्र में केलकर का महान् योगदान इस अर्थ में है कि उन्होंने इस बात के लिए यथासंभव प्रयास किया कि लोग नाटक, थियेटर और अभिनेताओं के प्रति सौतेली मां जैसा व्यवहार छोड़ दें। इस कला को उस समय के सांस्कृतिक जीवन में समुचित स्थान दिलाने के लिए उन्होंने प्रत्येक प्रयास किया।

अध्याय छः

इतिहासकार

'केसरी' के संस्थापकों का एक लक्ष्य था पराजित एवं हताश जनता में नये जीवन का संचार करना और उन्हें उनकी अंतर्निहित शक्तियों का ज्ञान कराना। इसका एक तरीका था उन्हें उनके ऐतिहासिक अतीत से परिचित कराना जब कि देश स्वतंत्र एवं सम्पन्न था। विष्णु शास्त्री ने पहले पाठकों का ध्यान विगत इतिहास की ओर खींचा। तिलक ने इस कार्य को वहां से आगे बढ़ाया जहां विष्णु शास्त्री ने छोड़ा था और शिवाजी उत्सव का आरम्भ करके हमारे विगत इतिहास को एक ठोस स्वरूप प्रदान किया। इसने न केवल जनता की स्वयं में आस्था जगाई बल्कि इतिहास के अध्ययन एवं ऐतिहासिक अनुसंधान कार्य को महान प्रेरणा दी। इस परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए केलकर अत्यंत उपयुक्त व्यक्ति थे। उनके गुरु वासुदेव शास्त्री ने केलकर का ध्यान ऐतिहासिक अध्ययन की ओर खींचा जिसके फलस्वरूप आगामी वर्षों में भारत इतिहास संशोधक मंडल की स्थापना हुई जिससे केलकर का घनिष्ठ सम्बन्ध था और वे अनेक वर्षों तक उसके अध्यक्ष रहे थे।

अपनी ऐतिहासिक रचनाओं के लिए केलकर ने ऐसे विषयों का चयन किया जो हमारे स्वतंत्रता संघर्ष पर नया प्रकाश डाल सकें और उसे सही ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रख सकें।

यह माना जाता है कि विश्वविद्यालय का उद्देश्य ज्ञान की खोज, संरक्षण, प्रसार और सत्य का संधान है। केलकर अंतरचेतन रूप से एक अध्यापक थे और अपने समस्त ऐतिहासिक लेखन में वे एक विश्वविद्यालय का कार्यभार पूरा करने में लगे प्रतीत होते हैं। उन्होंने गिबन को चाव से पढ़ा था और मकाले के महान प्रशंसक थे। खरे के मातहत उनकी शिक्षादीक्षा ने उनको मराठा इतिहास का भी एक गहन अध्येता बना दिया।

केलकर की प्रथम ऐतिहासिक अध्ययन कृति 'आयरलैंड का इतिहास' १९०९ में प्रकाशित हुई। उस समय आयरलैंड में स्वराज-आन्दोलन पूरे ज़ोर पर था।

आयरलैंड के बारे में लिखने की प्रेरणा उन्हें वायसराय की इक्ज़ीक्यूटिव कौंसिल में दिए गए रासबिहारी घोष के एक वक्तव्य से मिली। एक साक्षात्कर्ता को उन्होंने बताया, 'आयरलैंड का इतिहास' पुस्तक तब लिखी गई जब स्वराज-आंदोलन पूरे ज़ोर पर था और भारतीय क्रांतिकारियों ने बंगाल में अपनी गतिविधियाँ शुरू कर दी थीं। यह विचार मुझे सरकार को दी गई रासबिहारी घोष की इस चेतावनी से मिला था कि भारत तेज़ी से एक अन्य आयरलैंड में बदलता जा रहा है।

इस इतिहास पुस्तक के लिखने का मुख्य उद्देश्य था आयरलैंड और भारत के बीच समानता और विभिन्नता को खोजना। उन्होंने महसूस किया कि दोनों की समस्याएँ और आकांक्षाएँ इतनी समान थीं कि समय विशेष (१६०८) में उन पर विचार-विमर्श अत्यंत प्रासंगिक था। वे यह भी जानते थे कि यह विचार-विमर्श दोनों देशों के समान शासकों को कुपित कर देगा लेकिन उन्होंने इस आशा से यह खतरा मोल लिया कि ठंडे और पूग्रर्वाहमुक्त तरीके से समस्या को समझने की कोशिश करने पर दोनों ही पक्ष लाभान्वित होंगे।

आयरलैंड का इतिहास, जब केलकर ने इसे लिखा, उतने विस्तार से भारतीयों को ज्ञात नहीं था। पुस्तक के अंत में केलकर ने आयरिश नेताओं का जीवन चरित्र शामिल किया है। संभव है कि ऐसा करके उन्होंने पाठकों को दोनों देशों के नेताओं की तुलना करने और उनके तरीकों को समझने का अवसर देना चाहा हो।

पुस्तक के एक अध्याय में केलकर ने आयरलैंड में अनेक जन-उभारों का सर्वेक्षण किया है और उनकी व्यर्थता की ओर संकेत किया है। वे इस तथ्य को भी रेखांकित किए बगैर नहीं रहते कि भारत को भी मुक्त करने के लिए सशस्त्र क्रांति उतनी ही निरर्थक सिद्ध होगी।

केलकर की 'फ्रांसीसी क्रांति का इतिहास' पुस्तक १६३७ में प्रकाशित हुई। केलकर की अन्य रचनाओं की भांति यह भी एक ऐसी क्रांति का अत्यंत पठनीय विवरण है जिसने विश्व-इतिहास की धारा उतने ही निश्चित रूप से प्रभावित की जितने से कि बहुत बाद की रूसी क्रांति ने। लेकिन इस सम्पूर्ण वृत्तांत में कहीं भी केलकर इस क्रांति की मूलभूत उपलब्धियों की ओर संकेत नहीं करते; कि यह सामंतवाद और विशेषाधिकार के विरुद्ध एक विद्रोह था, और कि क्रांति पश्चात् साम्राज्य की एक अल्प अवधि के बावजूद न तो योरप और न विश्व पहले जैसा हो सकता था।

भारतीय एवं विशेषकर मराठा इतिहास में भी केलकर की प्रगाढ़ रुचि हमें देखने को मिलती है। हम पहले ही देख चुके हैं कि किस प्रकार उन्नीसवीं सदी के अंत में इतिहास और ऐतिहासिक अनुसंधान में रुचि तेजी से बढ़ रही थी।

खरे शास्त्री जो अत्यंत कठिन परिस्थितियों में पटवर्धनों के कागज़ात[1] की व्यापक छानबीन कर रहे थे, के अलावा अन्य लोग भी थे जो ऐतिहासिक अनुसंधान, विशेषकर मराठा इतिहास में शोध, में असाधारण योगदान कर रहे थे। उनमें सर्वाधिक अग्रणी थे राजवाड़े जिनकी पुरानी ऐतिहासिक दस्तावेज़ों को खोज निकालने की प्रतिभा उतनी ही विस्मयकारी थी जितने कि अपने अध्ययन से निकाले गये उनके निष्कर्ष।

इस क्षेत्र में लगे अन्य जिन लोगों का केलकर ज़िक्र करते हैं वे हैं साने, फडनीस और सरदेसाई। इन सब में साने, खरे और राजवाड़े समुचित अर्थों में शोधकर्ता थे जबकि अन्य दो शोधकर्ता की अपेक्षा ऐतिहासिक सामग्रियों के संग्रह-कर्ता अधिक थे। अपने लेख 'मराठा इतिहास की पुनर्रचना' में केलकर स्वीकार करते हैं कि ऐतिहासिक अनुसंधान अपेक्षाकृत नया विकास है और इसमें हमारी रुचि हमारी अंग्रेजी शिक्षा का परिणाम है। भारत में ज्ञान के क्षेत्र में अब इतिहास-बोध जग रहा है और जबकि ऐतिहासिक अनुसंधान का उद्देश्य अब तक अज्ञात तथ्य एवं सूचनाएं प्रकाश में लाना है, इसका मुख्य आकर्षण इस बात में निहित है कि वह दबा हुआ ज्ञान निकाल पाना बहुत कठिन है। तब केलकर संग्रहीत व्यापक सामग्री का एक अंदाज़ हमें देते हैं। 'संग्रहीत सामग्री के करीब ३५ खंड प्रकाशित हो चुके हैं और यदि शेष सभी सामग्री प्रकाशित की जाये तो वह लगभग १५० खंडों में पूरी होगी।' यह कार्य ठोस आर्थिक सहायता के बिना असंभव होगा और वे धनिकों, विशेषकर रियासतों के मालिकों को इस सम्बन्ध में कुछ करने का निमंत्रण देते हैं।

केलकर की सर्वाधिक असाधारण कृति है 'मराठे आणि इंग्रेज'—मराठा और अंग्रेज़। पुस्तक की रचना उतनी ही रोचक है जितनी कि उसकी उपलब्धि श्रेयस्कर। १८१८ ई० में मराठा साम्राज्य का अंत हुआ। सौ साल बाद १९१८ में कुछ व्यक्तियों ने इस घटना की सौवीं जयन्ती एक पुस्तक निकाल कर मनाने का फैसला किया। ग्रुप के प्रत्येक सदस्य को एक लेख देना था जो सभी बाद में पुस्तकाकार प्रकाशित होते। जैसा कि अक्सर ऐसे फैसलों के साथ होता है, किसी ने भी कुछ नहीं लिखा और चूंकि समय अत्यंत महत्त्वपूर्ण था, केलकर ने यह कार्य अकेले करने का फैसला किया। यह महत्त्वपूर्ण पुस्तक उसी का परिणाम थी। इसका आरंभ अंग्रज़ों के आगमन से होता है और अंत उनके हाथों मराठा राज्य के पतन के साथ। केलकर उस समय तिलक द्वारा आरंभ किए गए स्वराज-आंदोलन में पूरी तरह व्यस्त थे और विदेश यात्रा का कार्यक्रम बना रखा था। यह कोई

---

१ पटवर्धन पेशवा सरदारों की अगली कतारों में थे और दक्षिण महाराष्ट्र में विस्तृत जागीरों के स्वामी थे।

आश्चर्य की बात नहीं कि वे लिखते हैं, 'मराठे आणि इंग्रेज मैंने तब लिखा जब मेरे पास अत्यन्त कम समय था लेकिन चूंकि इसे मराठा राज्य के अंत की साहित्यिक जयन्ती होना था, मुझे समय के प्रत्येक क्षण का इस्तेमाल करके इसे पूरा करना था।' पुस्तक समय से मार्च १९१८ में प्रकाशित हुई और अप्रैल में केलकर ईंगलैंड यात्रा पर गए। यह तथ्य मराठा इतिहास के प्रति उनका प्रेम ही नहीं प्रदर्शित करता बल्कि कठिन श्रम की उनकी अपार क्षमता और एक बार हाथ में लिए गए कार्य को अधूरा न छोड़ने की उनकी आदत भी दिखाता है।

केलकर पुस्तक समाप्त करने के लिए की गई जल्दबाजी का हवाला देते हुए कहते हैं कि इस विषय के साथ पूरा न्याय करने के लिए उसी आकार की एक अन्य पुस्तक की आवश्यकता होगी। केलकर पुस्तक को दो भागों में विभाजित करते हैं। पहला भाग पेशवाओं के पतन के साथ खत्म होता है और दूसरा मराठा संघ के अन्य सदस्यों का अंग्रेज़ों द्वारा दमन होने के साथ। दो पृथक् अध्याय मराठों की भव्य रणनीति और उनकी प्रशासन मशीनरी को समर्पित हैं।

यद्यपि केलकर मराठाओं और उनकी उपलब्धियों पर गर्व करते हैं, यह बात उनके विवेक को प्रभावित नहीं करती। एक सही इतिहासकार की भाँति वे मराठों की उपलब्धियों और त्रुटियों की ओर संकेत करते हैं और अंग्रेज़ों को उनके गुणों के लिए समुचित श्रेय देते हैं। जबकि भारक के सभी जातियों और राष्ट्रीयताओं के राजकुमार, ब्राह्मण, मराठा, राजपूत अंग्रेज़ों से सहायता की याचना कर रहे थे, अंग्रेज़ों ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत में सभी अंग्रेज एक हैं; कि उनके हितों और निष्ठाओं में कोई विरोध नहीं था; और यह कि भारत के तीन विभिन्न कोनों में रहते हुए भी वे एक ही सत्ता के आज्ञाकारी अनुचर थे और एक ही नीति का अनुसरण करते थे; कि वे अपने बड़ों की अवज्ञा कभी नहीं करते थे, और यदि उनके बीच कोई होड़ की भावना थी तो वह कम्पनी राज के अधिकतम लाभ के लिए थी। इस बात को जारी रखते हुए वे कहते हैं, 'जिस प्रकार मुगल साम्राज्य के स्थानीय सूबेदार स्वतंत्र नवाब और राजकुमार बन गये, उसी प्रकार क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स भी कर सकते थे। यदि कम्पनी के किसी स्थानीय कर्मचारी ने अपने लिए देश का एक टुकड़ा हड़प लिया होता तो उसको दंडित करने के लिए कम्पनी प्रत्येक मुसीबत उठाती। निस्संदेह भारत में अनेक अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों ने व्यक्तिगत रूप से बहुत अधिक सम्पदा जुटाई, लेकिन उन्होंने इंग्लैंड और फ्रांस की मूल कम्पनियों के विरुद्ध कभी विद्रोह नहीं किया। वे अपने बीच लड़ते रहे तो भी उन्होंने अपने देश वासियों के विरुद्ध भारतीयों की सहायता कभी नहीं चाही। वे हमेशा यह महसूस करते थे कि उनका एक ही देश और एक ही राष्ट्र से संबंध है।'

इसके विपरीत 'भारत के राजकुमारों ने अपने आंतरिक संघर्षों में विदेशियों

की मदद मांगी जिसके अंतिम परिणामस्वरूप उन्हें अपनी आज़ादी खोनी पड़ी। इनमें से किसी ने भी पर्याप्त दूरदर्शितापूर्ण राजनयिकता का परिचय नहीं दिया और खतरे को भांप नहीं सके।[1]

केलकर के मतानुसार मराठों ने अपना राज्य दो कारणों से खो दिया। पहला कारण था छोटे स्वतंत्र राजतंत्रों की स्थापना के प्रति उनका मोह और एकता, अनुशासन और राष्ट्रीय गौरव का उनमें अभाव। उनके पतन का दूसरा कारण था श्रेष्ठ फौजी साज-सामानों और आधुनिक, सुप्रशिक्षित सेना का अभाव। 'कोई भी मराठा जनरल ऐसा नहीं था जिसका अंग्रेजों से संघर्ष नहीं हुआ, लेकिन वे दो या तीन भी एक साथ मिलकर नहीं लड़े, सारों के एक साथ मिलकर लड़ने की तो बात ही छोड़ दीजिए।'

मराठों की राज्यरणनीति का वर्णन केलकर गर्व और बहुत कुछ गीतात्मकता के साथ करते हैं। लेकिन वे इस बात को लक्षित नहीं कर पाते कि जबकि मराठाओं की आंख दूरस्थ दिल्ली पर केन्द्रित थी, उन्होंने दक्षिण महाराष्ट्र पर ध्यान देते हुए अपने पार्श्व भाग को ही सुसंगठित करने के बारे में कभी नहीं सोचा। सुसंगठन के बिना विस्तार विजय को स्थिर करने या साम्राज्य स्थापित करने का तरीका नहीं है। अंग्रेज़ों ने यह गलती कभी नहीं की। अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए वे समस्त उपलब्ध फौजी एवं राजनीतिक विकल्पों का प्रयोग करते हुए अपने व्यापार में कदम-ब-कदम आगे बढ़े।

वासुदेवशास्त्री खरे, जिनके द्वारा लिखी गयी प्रस्तावना विषय में उतना ही महत्त्वपूर्ण योगदान है जितना कि स्वयं पुस्तक, इस तत्त्व को बहुत स्पष्टता से सामने लाते हैं। प्रस्तावना में वे कहते हैं: '१७२०-१७३० की अवधि में मराठाओं ने एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया और अगले चालीस वर्षों में उसे गंवा दिया। यदि मराठा सरदारों ने अपने लोभ पर नियंत्रण रखा होता और नई जागीरें प्राप्त करने के लिए नए क्षेत्रों को विजय के पीछे न पड़े होते तो मराठा साम्राज्य इतना ज्यादा विस्तृत भले न होता लेकिन निश्चय ही वह ज्यादा शक्तिशाली और स्थायी हुआ होता। अपनी मनमानी करने वाले मराठा सरदारों ने लाहौर पर आक्रमण तो किया लेकिन मराठा संतों की जन्मभूमि वलेघाट और औरंगाबाद, नांदेण, जालना, बीड एवं परवर्ती इलाकों को मिलाकर बनाने वाले महाराष्ट्र के अंतर्भाग को अपने भरपूर नियंत्रण में नहीं ला सके। शांतिकाल में मराठाओं की तूती सर्वत्र बोलती थी। लेकिन अव्यवस्थित परिस्थितियों में उनकी कहीं नहीं चलती थी। इसका कारण यह था कि मराठाओं ने देश के किसी हिस्से पर अपनी पकड़ मज़बूत नहीं की।'

---

१. पृष्ठ २०४, वही।

मराठों के पतन का एक और कारण, जिसका केलकर की पुस्तक में कोई जिक्र नहीं है, यह है कि वह अपनी सम्पूर्ण रणनीति में मराठा नौसेना के महत्त्व को नहीं समझ पाये। शिवाजी ही एक मात्र मराठा छत्रपति थे जिन्होंने इसका महत्त्व समझा था और राज्य के अन्य विभागों को क्षति पहुँचाकर भी काफी बड़ी नौसेना तैयार कर ली। इसके विपरीत नाना साहब पेशवा (१७२१-१७६१) पहला मराठा था जिसने अंग्रेज़ों को अपनी मदद के लिए बुलाया। और यह मदद अन्य चीज़ों के अलावा मराठा बेड़े के एडमिरल आंग्रे, जिसने पेशवाओं का प्रभुत्त्व स्वीकार करने से इनकार कर दिया था, को ध्वस्त करने के लिए मांगी गयी थी। इससे राजनयिक क्षमता का दुःखद अभाव परिलक्षित होता है क्योंकि मराठा बेड़े के विध्वंस से अंग्रेज़ों का पश्चिमी तट पर प्रभुत्त्व कायम हो गया और इस प्रकार उनके समुद्री आपूर्ति मार्गों पर हमला आगामी काल में असंभव हो गया। यह न केवल इतिहास का संकुचित एवं आत्मघाती मूल्यांकन बल्कि सैनिक रणनीति के मुख्य अंग भौगोलिक कारकों का भी उतना ही गलत मूल्यांकन प्रदर्शित करता है। किसी भी सैनिक अभियान में शत्रु के आपूर्ति मार्गों का अवरोधन एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बाजीराव ने निजाम के विरुद्ध यही किया था और अकालियों ने पानीपत में मराठों के विरुद्ध यही किया। भारतीय महाद्वीप में मराठों और अंग्रेज़ों के बीच सत्ता संघर्ष के समूचे काल में अंग्रेज़ नौसेना इस देश में बिना किसी देरी या बाधा के आवश्यक जन-शक्ति और सामग्री पहुंचाती रही। उन पर काबू पाने के लिए कोई भारतीय नौसेना नहीं थी। मराठों के पतन और बाद में विद्रोह की असफलता एक बड़ी सीमा तक इस महत्त्वपूर्ण कारक से जोड़ी जा सकती है। इन लम्बे अध्ययन-ग्रन्थों के अलावा केलकर ने अनेक लेख लिखे और ऐतिहासिक विषयों और समकालीन इतिहासकारों पर अनेक व्याख्यान दिए। वे उन सभी के कार्यों का मूल्यांकन करते हैं और खरे के बारे में विशेष श्रद्धा से कहते हैं, 'खरे मिरज जैसे एक छोटे, पिछड़े शहर में रहते थे, वे एक श्रम-साध्य और अल्पवेतन वाले कार्य में लगे हुए थे, आर्थिक आधार कोई उनके पास नहीं था। इन सब अभावों के बारे में सोचने पर कोई व्यक्ति अनेकानेक ग्रन्थों और मराठा इतिहास में अनुसंधान के लिए खरे की प्रशंसा किए बगैर नहीं रह सकता।'

केलकर जानते थे कि इतिहास को किसी बिन्दु पर समाजशस्त्र के व्यापकतर क्षेत्र से मिलना चाहिए। वे ऐतिहासिक अध्ययन के क्षेत्र में सामाजिक इतिहास के महत्त्व को भी जानते थे। अपने एक भाषण '६४ वर्ष पहले का पूना' में शहर की अंधेरी, गंदी तंग गलियों और अंधे मोड़ों, रात में अकेले बाहर जाने के खतरों, उस समय पूना की आबादी और शहर में घरों की संख्या का उल्लेख करते हैं। वे आवश्यक सामग्रियों की कीमतों की सूची भी देते हैं जो अंधेरी और गंदी गलियों के बावजूद उन दिनों में लौट जाने के लिए पाठक का जी ललचाएगा। अपने

भाषण 'शनिवार वाड़ा' में वे इतिहास के अध्ययन में पुरातत्व का समावेश करते हैं। यह जानकारी अत्यंत रोचक होगी कि वाड़ा जब मूलतः बाजीराव द्वारा तैयार कराया गया था, उसमें तीन प्रांगण और दो मंजिलें थीं और इसकी लागत १६११० रुपये पड़ी थी।

वे इतिहास के अध्ययन को तीन भागों में विभाजित करते हैं—ऐतिहासिक अनुसंधान, उपलब्ध सामग्री का संचय और इतिहास का दर्शन। ये तीनों मिलकर हमें ज्ञान, बुद्धिमत्ता और शक्ति प्रदान करते हैं। किसी सुझाव को समुचित उपमा से स्पष्ट करने की अपनी आदत के अनुसार केलकर इन तीनों की तुलना संगीत के ताल और लय से करते हैं जो उन दोनों की सहायता से समेकन के बिन्दु तक पहुंचता है।

केलकर ने इतिहास के अध्ययन को विचारोत्तेजक और लोकप्रिय बनाया। उन्हीं के कारण अनेक लोगों ने उनकी इस शाखा में रुचि लेना शुरू किया। शेक्सपियर के नाटक 'हेनरी चतुर्थ' में फाल्स्टाफ कहता है कि वह न केवल स्वयं व्यंग्य बोधपूर्ण है बल्कि दूसरे व्यक्तियों के लिए भी व्यंग्य बोध का स्रोत है। केलकर ने न केवल मानवीय ज्ञान की प्रत्येक शाखा का अवगाहन किया, बल्कि दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित किया। इसलिए उनको पत्रकार, इतिहासकार, साहित्यिक कलाकार अथवा राजनीतिक लेखक के रूप में वर्गीकृत कर पाना कठिन है। वे मानवीय ज्ञान के क्षेत्र में हरफनमौला हैं और अपने ज्ञान को दूसरों, के साथ बांटने के लिए हमेशा लालायित रहते हैं।

अध्याय सात

साहित्य-सम्राट्

२४ अगस्त १९३२ को केलकर साठ वर्ष के होने वाले थे और उनके मित्रों ने इस अवसर पर भव्य समारोह करने का फैसला किया। १९३२ में सविनय अवज्ञा आंदोलन अपने पूरे ज़ोर पर था और केलकर किसी सार्वजनिक समारोह के पक्ष में नहीं थे। लेकिन उनके मित्रों ने इसे एक प्रतिष्ठा का सवाल बना दिया और केलकर को उनके दबाव के सामने झुकना पड़ा। मित्र उनके शत्रुओं को दिखा देना चाहते थे कि केलकर के कितने अधिक अनुयायी हैं और लोग उनकी कितनी कद्र करते थे। 'यह समरोह किसी मदद के बिना और शत्रुओं के विरोध के बावजूद होना था। इस कोण से देखने पर मेरे मित्रों ने इस समारोह को अपनी, मेरी या मेरे शत्रुओं की आशाओं से परे सफल कर दिखाया।' (आत्मकथा, पृष्ठ ६३७-६३८) केलकर अपनी आत्मकथा के ३३ पृष्ठ इस समारोह का विवरण देने में लगाते हैं। इससे हमारा सरोकार इस अवसर पर महाराष्ट्र के विभिन्न साहित्यिक संगठनों और विद्वानों द्वारा उनको समर्पित अभिनंदन पत्र के कारण है। 'अपने जीवन में मैं राजनीतिक व्यक्तियों से अधिक विद्वानों के संपर्क में आया था इसलिए मुझको समर्पित उनके अभिनंदन पर मैं गर्व करता हूं।' (आत्मकथा, पृष्ठ ६५७)

अभिनंदन पत्र इस प्रकार प्रारंभ होता है : 'साहित्याचार्य नरसिंह चिंतामण केलकर ! ईश्वर की अनुकंपा से आपने जीवन के ६१ वें साल में प्रवेश किया है। हम, पूना और बाहर के विद्वज्जन और महाराष्ट्र के अनेक साहित्यिक संगठनों के प्रतिनिधि यहां आपको बधाई और शुभकामना देने के लिए एकत्र हुए हैं। हम आशा करते हैं कि हम आप पर किसी अन्य से अधिक अधिकार रखते हैं क्योंकि आप सबसे पहले एक साहित्यसेवी हैं, इसके बाद और कुछ।

'आपका साहित्य सृजन बृहत् बहुविध, और विचारों की विभिन्न रंगतें लिये हुए है। वह क्लासिकीय साहित्य की विद्वत्ता, उच्च गंभीरता और भद्रता जैसे गुणों से भरपूर है। वह शिक्षाप्रद और मनोरंजक दोनों ही है।'

'आपका एक असाधारण गुण यह है कि साहित्य की प्रत्येक विधा में आप निपुण हैं। कविता, नाटक, इतिहास, गल्प, साहित्य-समीक्षा, सम्पादकीय, निबंध और समीक्षा—इन सभी साहित्य रूपों में एक समान आसानी से आप काम कर सकते हैं चाहे बोलना हो या लिखना। किसी अन्य साहित्यिक शिल्पकार को तलाशना मुश्किल होगा जो इन विधाओं में समान दक्षता से काम कर सकता हो।

'इस छोटे अभिनंदन पत्र में आपके व्यापक साहित्य-सृजन का नाम मात्र उल्लेख भी असंभव है। लेकिन आपके व्यापक अध्ययन, दृष्टिकोण की उदारता और प्रत्येक प्रकार के साहित्यिक प्रयासों में सौंदर्य के मूल्यांकन की आपकी शक्ति का जायजा लेने के लिए आप द्वारा रचित 'तिलक की जीवनी', 'तात्याचे बंड,' 'सुभाषित आणि विनोद', 'मराठे आणि इंग्रेज़', 'लंदन और शिमला के सूचनापत्र', 'आयरलैंड का इतिहास' बड़ौदा साहित्य सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण; श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर के नाटकों का आलोचनात्मक मूल्यांकन पर थोड़ा विचार करना काफ़ी है।

'आप न केवल सरस्वती के मंदिर के पुजारी रहे हैं बल्कि 'केसरी' के स्तंभों के ज़रिए तथा अन्य अनेक रीतियों से आपने मराठी भाषा को समृद्ध बनाने के प्रत्येक प्रयास में सहायता की है।' (आत्मकथा पृष्ठ ६४९)

(१)

पिछले अध्यायों में हमने केलकर के कार्यों की समीक्षा एक पत्रकार, जीवनीकार, इतिहासकार, उपन्यासकार, कवि और नाटककार के रूप में की थी। अब हम साहित्य-समीक्षक के रूप में उनके कार्यों पर विचार करेंगे।

बड़ौदा साहित्य सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय भाषण के लिए केलकर ने 'साहित्य क्या है' विषय चुना था। यह आशा व्यक्त करने के बाद कि ऐसे ही और सम्मेलन मद्रास के तंजौर जैसे स्थानों पर भी होंगे जहाँ मराठी परिवार अब भी मराठी भाषा अपनाए हुए थे, केलकर ने जस्टिस रानाडे के प्रयास का अनुसरण करते हुए अपने भाषण का पहला भाग १९०८ से १९२१ तक के मराठी साहित्य की समीक्षा में लगाया। वे स्वर्गीय लेखकों को मधुर श्रद्धांजलियाँ अर्पित करते हैं 'प्रथम महान् मराठी उपन्यासकार हरिभाऊ आप्टे को, राम गणेश गडकरी को जिनकी कविता पाठक को यह महसूस कराती थी कि वह पहाड़ियों और झरनों से, एक चट्टान से दूसरी पर कूदते हुए और झरनों का पानी पीते हुए गुजर रहा है, नारायण वामन तिलक को जिनकी कविता स्वच्छ ताल के पारदर्शी जल की याद दिलाती है जिसमें हम आनंद से तैर सकते हैं और सर्वत्र खिले कमल की पंखुड़ियां चुन सकते हैं। और अनेक लोगों को जिन्होंने मराठी भाषा को समृद्ध बनाने में योगदान किया है। वे मराठी साहित्य के समृद्ध रूपों की

प्रशंसा करते हैं और इसके आलोचकों की निंदा करते हैं। तिलक के 'गीतारहस्य' के बारे में लिखते हुए वे कहते हैं : 'प्रत्येक साहित्यिक युग किसी महान् लेखक या उस समय के साहित्य-सृजन के आधार पर नाम पाता है। यदि भविष्य के किसी इतिहासकार को मराठी साहित्य के वर्तमान युग का नाम देना हुआ तो वह इसे 'गीतारहस्य युग' का नाम देगा।' फिर वह मुख्य विषय 'साहित्य क्या है' पर आते हैं। साहित्य की परिभाषा की कठिनाइयाँ बताते हुए वे डन्स को उद्धृत करते हैं जो कहता है, 'एक बहुत लम्बा सीमावर्ती क्षेत्र है जहाँ विचारों की अभिव्यक्ति साहित्य रूपी शुद्ध सोने में बदल जाती है।' वे कहते हैं कि यद्यपि साहित्य हमेशा शब्द और भाषा तक सीमित है, इसमें अनेक भौतिक और अभौतिक गुण जैसे भार, आकार, रंग, श्रेष्ठता, आत्मा, इतिहास, सफलता और पराजय और ईश्वर की अनुकंपा निहित है।

इसके बाद वे साहित्य के भौतिक गुणों पर विचार करते हैं, 'कुछ शब्दों या पदों, कितने ही अच्छे वे क्यों न हों, और न ही प्रत्येक बोले गए अथवा लिखित शब्द से साहित्य की रचना होती है। साहित्य को समुचित अर्थ में साहित्य होने के लिए उसमें भार और आकार दोनों होना चाहिए।' 'प्रत्येक पीढ़ी स्मृति और रुचि के माध्यम से समस्त उपलब्ध लेखन को आगे बढ़ाती है। इन दोनों के माध्यम से जो कुछ सरस्वती के कोश में आता है, वह साहित्य है। साहित्य शब्दों और उनके अर्थ से बनता है। इसलिए इसे त्रुटिहीन होना चाहिए और स्तरीयता और विवेक का गुण रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसे औचित्य एवं प्रासंगिकता की परीक्षा में भी सफल होना चाहिए।'

इसके बाद वे बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं अत्यंत विवादास्पद विषय, साहित्य का उद्देश्य, पर पहुंचते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि साहित्य का एकमात्र उद्देश्य मनोरंजन करना है। दूसरे यह ज़ोर देते हैं कि इसका एक नतिक उद्देश्य होना चाहिए। ('साहित्य हमें जीवन का आनंद लेने और इसको सहन करने की क्षमता प्रदान करता है'—डा० जानसन)। केलकर कहते हैं कि साहित्य का मूल्यांकन सिर्फ उसके नैतिक उद्देश्य से करना उसके क्षेत्र को अनावश्यक रूप से संकुचित कर देना होगा। 'शेक्सपियर अथवा कालिदास ने अपने नाटक उनकी नैतिक अंतर्वस्तु को ध्यान में रखकर लिखे थे अथवा उन्हें उन्होंने अपनी समृद्ध कल्पना की मुक्त उड़ान के लिए लिखा था ? यदि हम कलात्मक सृजन के पैरों में उद्देश्य की बेड़ियां डाल देंगे तो यह घनघोर अनर्थ की ओर ले जाएगा। एक तैराक जो पानी में क्रीड़ा करता है, वहां सिर्फ नहाने के लिए नहीं जाता। एक शिकार अच्छा मांस प्राप्त करने के लिए ही शिकार करने नहीं जाता। यदि साहित्य श्रेष्ठ कलाकृति होने के अलावा कोई नैतिक उद्देश्य भी पूरा करता है तो अच्छी बात है। लेकिन एक ऐसा बिन्दु भी होना चाहिए जिसके परे प्रेरणा का सवाल अप्रासंगिक हो

जाता है। यदि आप यह सवाल पूछते हैं कि कोई विशेष सड़क कहां जाती है तो जवाब मिल सकता है कि वह शहर की ओर जाती है। लेकिन शहर पहुंच जाने के बाद आप यह पूछते हैं कि शहर कहां ले जाएगा, तो कैसे जवाब की आशा आप करेंगे ? कोई विषय कल्पनात्मक ऊंचाइयों के कारण ही साहित्यिक गुण प्राप्त करता है। यह कल्पना विचारों अलंकारों, अथवा रेटरिक के ज़रिए स्वयं को व्यक्त करती है।'

इस सवाल का जवाब देने के लिए केलकर वेदांतिक शब्दावली का प्रयोग करते हैं। मानवीय आत्मा विश्वात्मा से एकरूप होने के लिए हमेशा लालायित रहती है और जिस सीमा तक वह इसमें सफल होती है, वह आनंद और मुक्ति का अनुभव करती है। साहित्य में कोई व्यक्ति कल्पनात्मक रूप से दूसरे व्यक्ति के अनुभवों से एकरूपता स्थापित कर सकता है। ऐसा वह अपनी निजी पहचान किए बगैर करता है। अपनी पहचान खोए बिना किसी और के अनुभवों से एक-रूप होने की प्रक्रिया साहित्यिक अनुरंजन का रहस्य है। जब आप की बेटी अपने पति के घर के लिए आपका घर छोड़ती है तो आप रोते हैं। यह अनुभव आपका अपना, व्यक्तिगत, एकांगी मामला है। लेकिन हम शकुंतला को कण्व का आश्रम छोड़ते देखकर भी रोते हैं। यह एक साहित्यिक अथवा काव्यात्मक अनुभव है। हम अपने आपको भूलते नहीं बल्कि एक छोटे समयांतराल के लिए एक भिन्न भूमिका निभाने लगते हैं। तब अनुभव की गई सनसनी दुखद नहीं, आनंदमय होती है। यह सुखद सनसनी अपने अत्यंत तीव्र रूप में समाधि का रूप ले सकती है। केलकर वेदान्तिक पदावली का प्रयोग करते हुए इस मानसिक अवस्था को सविकल्प समाधि का नाम देते हैं। समाधि में सामान्यतया व्यक्ति समस्त चेतना खो देता है। लेकिन इस समाधि में व्यक्तिगत चेतना बनी रहती है। केलकर जो कहना चाहते हैं, वह यह है कि साहित्य हमारे मानसिक क्षितिज का विस्तार करता है, भावनात्मकता को बढ़ाता है, हमें वे चीज़ें दिखाता, अनुभव कराता है जिन्हें हम सामान्यतया छोड़ देते हैं। साहित्य से प्राप्त होने वाले आनंद को वेदांतिक शब्दावली में स्पष्ट करने का प्रयास करते हुए केलकर वस्तुतः रहस्यवाद के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। अनेक लोगों का कहना है कि समस्त महान् कलाकृतियों का मूल और उनकी प्रेरणा का स्रोत विश्व की एकता का काल्पनिक अवबोध है। यह एक प्रकार का रहस्यात्मक अनुभव है। यही कारण है कि शीतल बयार में कुमुदों को नाचते देखकर वर्ड्सवर्थ झूमने लगता है। यही कारण है कि शेली कवि के बारे में यह लिखता है :

'उषा से संध्याकाल तक वह देखता रहेगा,
झील द्वारा प्रतिबिंबित चमकीले सूर्य को,
पीली मधुमक्खियों को···

वे कौन सी चीज़ हैं इस पर न वह ध्यान देगा और न देखेगा,
लेकिन इन्हीं से वह सृजन कर सकता है,
जीवन्त मनुष्यों से भी अधिक यथार्थ रूपों का,
अमरत्व के शिशुओं का।'

कोई नाटक देखते हुए इस मानसिक स्थिति का अनुभव हम अक्सर करते हैं। यह जानते हुए भी कि हम और मंच के अभिनेता एक दूसरे से अलग दो भिन्न इकाइयाँ हैं फिर भी जब हम शकुंतला को विदाई देते हुए कण्व को देखते हैं तो रोने लगते हैं। क्षण भर के लिए हम भूल जाते हैं कि हम हम हैं और ऐसे अनुभवों में खो जाते हैं जो हमारे अपने नहीं हैं। इस बात के परिचित उदाहरण हैं कि मंच पर कोई अत्यधिक भावुक दृश्य उपस्थित होने पर दर्शकों में से ही कोई व्यक्ति चिल्ला पड़ता है, जैसे डेसडेमोना का गला घोंटते हुए ओथेलो को देखकर। साधारणीकरण की यह तीव्र अवस्था केलकर के अनुसार समाधि की अवस्था है। निश्चय ही यह सही वेदांतिक अर्थों में समाधि नहीं है। केलकर भी यह जानते हैं और इसीलिए वे यह विशेषण लगाते हैं कि इस प्रकार कि समाधि में आप अपनी पहचान के प्रति सचेत रहते हैं और एक ही और उसी समय में दो अनुभवों से गुज़रते हैं। आगे वे कहते हैं कि वही साहित्य सचमुच महान् है जो एक ही और उसी समय में वैसी अनेक अनुभूतियों को जन्म देता है। शांत सरोवर में एक पत्थर फेंकने पर हम केन्द्रीय विन्दु से एक के बाद एक वृत्ताकार लहर फैलती हुई पाते हैं। एक प्रतिभाशाली कृति हमारे मस्तिष्क के शांत जल में वैसी ही लहरें शुरू कर सकती है लेकिन ये लहरें बहुत तेज़ पैदा होती हैं और ब्रह्मांड के छोरों तक फैल जाती हैं।'

अहमदाबाद के प्रो० अठावले केलकर के इस विशेष पद प्रयोग पर रोचक प्रकाश डालते हैं। महान् साहित्य के पढ़ने से अनुभव किए गए आनंद का वर्णन करने के लिए 'सविकल्प समाधि' शब्द के प्रयोग पर प्रो० अठावले ने केलकर को बधाई दी थी। 'यह वर्णन बहुत ही सटीक और हमारे प्राचीन संस्कृत साहित्य की परम्पराओं के अनुरूप है। इसके लिए आप विशेष बधाई के पात्र हैं। क्या आपने यह पद किसी प्राचीन संस्कृत भाष्य से लिया है?' 'नहीं,' केलकर ने जवाब दिया, 'यह पद अकस्मात् बिना किसी पूर्वचिंतन के मेरे दिमाग में आया। क्यों, क्या यह शब्द आपको किसी प्राचीन संस्कृत साहित्य में मिला है?' प्रो० अठावले ने जवाब दिया, 'हां, यह पद नागेश भट्ट द्वारा की गयी 'रसगंगाधर' की समीक्षा में आता है:' (जीवन प्रसंग—पृष्ठ २०५)। उसी भाषण में केलकर आधुनिक मराठी कविता की विस्तृत समीक्षा करते हैं। 'आधुनिक कविता ब्रिटिश राज द्वारा लाई गई विचार और रुचि के क्षेत्र में क्रांति को प्रतिबिंबित करती है।

कुछ लोग आज भी पुराने संस्कृत ग्रंथों से प्रेरणा लेते हैं; दूसरे लोगों ने माध्यम को सरलीकृत करके नई प्रवृत्तियों के अनुकूल बनाने का प्रयास किया है और कुछ अन्य लोग अनुवाद की ओर प्रवृत्त हुए हैं। इन सभी ने मिलकर मराठी कविता में विषय वस्तु, भाषा और प्रयोग की विविधता ला दी है।'

इस नई कविता की असाधारण विशेषता उसकी गीतात्मकता थी। इसका प्रयोग करने वाले प्रथम व्यक्ति 'केशवसुत' थे और यह तुरंत लोकप्रिय हो गई। अन्य लोगों ने केशवसुत का अनुसरण किया और मराठी कविता का यह युग केशवसुत का युग कहलाया। इसमें अधिकांश कविताएँ गीत शैली में लिखे गए छोटे-छोटे टुकड़े हैं। वे एक ही भावना अथवा आकांक्षा के चित्रण तक सीमित रहती हैं और लय के अनुरूप ही उनकी अपील बढ़ती जाती है।' केलकर मराठी कविता में केशवसुत का योगदान स्वीकार करते हैं लेकिन उनकी शिथिल रचना और अपरिष्कृत भाषा की आलोचना करते हुए उनके बढ़ते हुए प्रयोग के विरुद्ध चेतावनी देते हैं।

कोई भी आधुनिक लेखक इस आलोचना की कमज़ोरी को लक्षित किए बगर नहीं रह सकता। संभवत: केलकर की भी चेतना में यह बात थी क्योंकि वे ज़्यादा व्यापक विश्लेषण की आवश्यकता की ओर संकेत करते हैं। 'ऐसी आलोचना अत्यंत आवश्यक है जो इस नई कविता पर व्यापक, निष्पक्ष और समीक्षात्मक दृष्टि डाल सके।' स्वयं व्यंगकार होने की वजह से केलकर इस नई कविता की व्यंग्य प्रवृत्ति को लक्षित किए बगर नहीं रहते। इस सम्बन्ध में वे कोल्हटकर, गडकरी और अन्य लोगों का ज़िक्र करते हुए यह महत्त्वपूर्ण टिप्पणी करते हैं कि व्यंग्य के भावनात्मक से अधिक बौद्धिक व्यवहार होने के वजह से वह कविता से अधिक गद्य के लिए उपयुक्त है।

(२)

१९३१ में केलकर ने मध्य भारतीय साहित्य सम्मेलन को सम्बोधित किया। अपनी बातचीत के दौरान उन्होंने कविता और गद्य के बीच अन्तर की ओर संकेत किया। कविता अपने आप में एक कला है, इसलिए अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपने स्वयं के उपकरण प्रयोग करती है। ये उपकरण हैं लय और ताल। इस कला में निपुणता हासिल करने के लिए इन उपकरणों से संगति होनी चाहिए। इस सकारात्मक वक्तव्य के बाद केलकर यह बताने लगते हैं कि इमर्सन, कार्लाइल और बाणभट्ट का गद्य अत्यंत काव्यमय है।

केलकर की आलोचनात्मक कृतियों में हम अक्सर ऐसे अंतर्विरोधी वक्तव्य पाते हैं। अन्यथा हमने कविता और गद्य के बारे में केलकर की टिप्पणियों पर ध्यान दिया है। वहां वे कहते हैं कि चूंकि कविता का कार्य मनोरंजन करना है

और जीवन मनोरंजन से अधिक गंभीर है, इसलिए कविता का सृजन गद्य रचना से कम है। लेकिन इस भाषण में वे कहते हैं कि मानवीय क्रिया कलाप का अधिकांश हास्य और आश्चर्य (इसके लिए वे मराठी शब्द अद्भुत का प्रयोग करते हैं। अन्यथा वे अंग्रेज़ी शब्द रोमांस को अद्भुत के पर्याय के रूप में प्रयोग करते हैं) पर आधारित है और मानवीय क्रियाकलाप का अधिकांश काव्यात्मक रूप में व्यक्त किया जा सकता है। इसी प्रकार एक स्थान पर वे कहते हैं कि कल्पनात्मक साहित्य में प्रेरणा की तलाश अनुचित होगी। लेकिन १९३५ में एक साहित्यिक गोष्ठी को सम्बोधित करते हुए वे कहते हैं कि 'यद्यपि समस्त साहित्य में सौंदर्य का गुण होना चाहिए, फिर भी साहित्य का वास्तविक उद्देश्य आसपास के संसार का सर्वेक्षण, उसकी बुराइयों की ओर संकेत करना और इसे बेहतर बनाने के लिए लोगों को तैयार करना है, इस प्रकार वे साहित्य से एक नैतिक उद्देश्य से जोड़ते हैं जिसे कि पूर्ववर्ती परिभाषा में नकार दिया था। साहित्य समीक्षा के प्रति इस एकांगी दृष्टिकोण के कारण केलकर पर यह आरोप लगाया जा सकता है कि यद्यपि उन्होंने साहित्य के लगभग सभी रूपों में सृजन किया है फिर भी वे अपने आधार के बारे में आश्वस्त नहीं हैं। वे सिर्फ सतह कुरेदते हैं और प्राथमिक सिद्धांतों पर कभी दृष्टि नहीं डालते। यह सच हो सकता है लेकिन यह भी सच है कि केलकर ने अपने समकालीनों का ध्यान साहित्य-समीक्षा की विभिन्न शाखाओं की ओर खींचा और स्वयं उठाए सवलों पर ताजी दृष्टि डालने के लिए लोगों को प्रेरित किया।

(३)

अपनी प्रस्थापनाओं को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न अलंकारों का प्रयोग करने में केलकर अत्यंत निपुण थे। १९१९ में इंगलैंड जाते हुए पहली बार उन्होंने बर्फ से ढकी पर्वत की चोटी देखी थी। घर को भेजे अपने खत में उन्होंने लिखा कि वह ताजा कटा नारियल छितराया हुआ पुलाव का एक ढेर प्रतीत होता था। इस पर यह टिप्पणी की गई कि केलकर अच्छे पकवानों के शौकीन थे। इससे उत्तेजित होकर केलकर ने एक लेख (सह्याद्रि, जुलाई १९३५ में) लिखा— 'उपमा और इसका एकमात्र सर्वाधिक विशिष्ट प्रतीक।' आधारभूमि को स्पष्ट करने के लिए वे एक व्यक्तिगत व्याख्या से आरंभ करते हैं। यह विशेष उपमा किस प्रकार उनके चिंतन में आई? 'सबसे पहली बार मैंने १९१९ में इंगलैंड जाने वाली बोट से स्पेन के दक्षिणी तट पर बर्फ से ढका पहाड़ देखा था। उस समय तक मैंने खाना नहीं खाया था और न विशेष रूप से भूखा ही था। उपरोक्त दृश्य को देखकर दो तीन भिन्न उपमाएँ मेरे दिमाग में आई लेकिन मैंने पुलाव वाली उपमा को ही पसन्द किया। बर्फ ढकी चोटी देखने वाला परि-

वार का मैं ही एकमात्र सदस्य था। घर की महिलाओं और बच्चों का ऐसा करना असंभव था। इसलिए इस दृश्य को उनके सामने साकार करने के लिए ऐसे बिम्ब का प्रयोग आवश्यक था जिससे वे परिचित हों। तीन बिंब मेरे दिमाग में आए। (१) शिव की पिंडी पर सफेद फूल (२) बहुत काले बूढ़े आदमी के सिर पर सफेद बाल (३) पुलाव पर छितराया हुआ नारियल। पहले बिम्ब के साथ दिक्कत यह थी कि शिव की पिंडी चोटी की ओर से ढालू होती है, इसलिए उस पर बिखेरे गए फूल नीचे गिर पड़ते हैं, टिकते नहीं। इसके विपरीत पहाड़ के ऊपर की बर्फ उससे लगी हुई थी, गिरने वाली नहीं थी। दूसरी उपमा को मैंने कुरूप मानकर ठुकरा दिया। लेकिन तीसरी उपमा सर्वाधिक उपयुक्त थी। पुलाव को प्लेट में रखकर कुक ही परोसता है, लेकिन उस पर नारियल छितराने का काम महिलाएँ ही करती हैं। यह काम वे किफायत से निपटाती हैं, जिनकी कला सिर्फ वही जानती हैं। पाठक सहमत होगा कि यह ऐसी उपमा है जिसे महिलाएँ तुरंत समझ जाएंगी। संक्षेप में, यह उपमा मेरी फौरी आवश्यकता या भोजन की चाह से नहीं बल्कि उन लोगों के अनुभव और ज्ञान की पृष्ठभूमि से जुड़ती है जिनके लिए यह लिखी गई थी।' (संग्रहीत रचनाएँ, खण्ड.१०, पृष्ठ २४६)

पुलाव के लिए इस वरीयता पर एक टिप्पणी की जा सकती है। बर्फीली चोटियों वाला हिमालय पर्वत सार्वभौम रूप से भगवान् शंकर का निवास माना जाता है। यदि केलकर ने इन संभव उपमाओं में से तीसरी का प्रयोग किया होता तो यह और अधिक उपयुक्त होता और उनके परिवार की महिलाएँ तुरंत ही बात समझ लेतीं। बर्फीली चोटियों वाले पर्वत से शिव का सम्बन्ध ऐसा विचार था और अब भी है जिससे नादान औरतें भी परिचित हैं।

इस व्याख्यात्मक प्राक्कथन के साथ केलकर मुख्य विषय पर आते हैं जिस पर वे दो भिन्न कोणों से विचार करते है : (१) विभिन्न वस्तुओं में एकरूपता या समानता की खोज मनुष्य क्यों करता है और (२) इस मानवीय विशेषता को स्वीकार करते हुए, किसी उपमा का एकमात्र विभेदकारी प्रतीक किसे कहा जा सकता है। इस लेख में वे केवल दूसरे मुद्दे पर विचार करते हैं जबकि पहला अधिक महत्त्वपूर्ण था। उस विशेष उपमा के सम्बन्ध में की गई आलोचना से केलकर विक्षुब्ध हो गए थे क्योंकि वे इसे उत्तम भोज्य पदार्थों के लिए उनकी कमजोरी, जो वास्तव में नहीं थी, पर एक टिप्पणी मानते थे। इसके बाद केलकर 'रघुवंश' के प्रथम पांच सर्गों में कालिदास द्वारा प्रयोग की गई पैंसठ उपमाओं की सूची प्रस्तुत करते हैं। कालिदास ने विभिन्न विचार-बिन्दुओं को स्पष्ट करने के लिए इन विभिन्न उपमाओं का प्रयोग किया था। इसलिए इससे उनके मस्तिष्क की विशेष स्थिति या उनके चरित्र का मूल्यांकन करना हास्यास्पद

होगा। कालिदास ऐसी अनेक उपमाओं का प्रयोग करते हैं जो नरनारी के प्रेम-सम्बन्धों पर आधारित हैं लेकिन इससे कालिदास के कामुक होने का निष्कर्ष निकालना गलत होगा। कोई लेखक जब एक विशेष उपमा का चयन करता है तो उसके पीछे विशेष कारण होते हैं। ये पैंसठ उपमाएं कालिदास के मस्तिष्क की मनोगत अवस्था नहीं बल्कि विचाराधीन उपमाओं का वस्तुगत यथार्थ इंगित करती हैं। इस प्रकार केलकर यह निष्कर्ष देते हैं कि प्रयुक्त उपमाओं के आधार पर किसी लेखक की मानसिक अवस्था का मूल्यांकन करना या उसकी कमज़ोरी दिखाना सही नहीं होगा।

लेकिन उत्तम भोज्य पदार्थों के लिए केलकर की रुचि का सवाल अभी रह जाता है। यदि जैसाकि वे कहते हैं, उत्तम भोज्य पदार्थों का शौकीन होना कोई गलत बात नहीं, तो किसी विचार को स्पष्ट करने के लिए किसी भोज्य पदार्थ के उपमा के रूप में प्रयोग में भी कोई अनौचित्य नहीं। वस्तुतः केलकर अक्सर ऐसा करते हैं। एक वक्तव्य की असंगतता सिद्ध करने के लिए केलकर कहते हैं कि वह चीनी की चासनी वाले चावल (शक्कर-भात) को चीन से बना चावल (शकरेचा भात) कहने जैसा होगा। अन्यत्र वे थोड़ा नमक मिलाकर स्वादिष्ट बनाए गए बटरमिल्क की उपमा का प्रयोग करते हैं। कहावतों के बारे में वे लिखते हैं, 'वे गरम मसाले की तरह हैं। ऐसी बात नहीं कि उनके बिना भाषा रुचिकर नहीं रहेगी या अपना आस्वाद खो देगी। लेकिन कहावतों की यह गरमा-गरम चासनी उनको सबसे अधिक स्वीकार्य है जो पुष्टिकर, सुस्वादु भोज्य पदार्थों के शौकीन हैं। लेकिन सादे भोजन के आदी व्यक्ति, यद्यपि वे इस चासनी को सीधे-सीधे ठुकराते नहीं, इसे विशेष अवसरों पर ही प्रयोग करते हैं।' ('कहावत और पुराणकथा', संग्रहीत रचनाएँ, खण्ड ३० पृष्ठ ९०७)

केलकर के आलोचनात्मक निबंधों का क्षेत्र बहुत व्यापक है और एक लघु प्रबन्ध में उन सभी पर ध्यान देना असंभव है। साहित्य में अश्लीलता पर लिखे लेख की तरह उनमें से और भी कुछ अत्यंत सतही हैं। वे कालिदास के रघुवंश की इन पंक्तियों को न केवल कुरूप बल्कि अश्लील भी मानते हैं। उनसे सहमत होना कठिन है क्योंकि अधिकांश पाठक इसको सुंदर ही पाएंगे :

सदयं बुभुजे महीभुजः सहसोद्वेगमियं व्रजेदिति।
अचिरोपनतां स मेदिनीं नवपाणिग्रहणां वधूमिव।।

(४)

अपने भाषण 'साहित्य, आज और कल' में केलकर मराठी साहित्य की तुलना ऋतुचक्र से करते हैं। सौ साल पहले मराठी साहित्य अपने अंधयुग, शीतकाल में था। लेकिन एक विदेशी सभ्यता के सम्पर्क ने इसमें नये जीवन का संचार

किया। वर्तमान मराठी साहित्य पिछले ६०-७० सालों का सृजन है और इसका गुण पूर्ववर्ती काल के साहित्य से बिलकुल भिन्न है। वे यह भविष्यवाणी भी करते हैंकि आगामी दिनों में हम आज से उतना ही भिन्न साहित्य पाएंगे जितना कि आज का साहित्य सौ साल पहले के साहित्य से भिन्न है। वे यह आशा व्यक्त करते हैं कि आने वाले दिनों में प्राकृतिक एवं भौतिक विज्ञानों पर अधिकाधिक पुस्तकें सामने आयेंगी क्योंकि बिना वैज्ञानिक ज्ञान के आधुनिक विश्व में हमारा अस्तित्व असंभव होगा। वैज्ञानिक साहित्य के बाद केलकर अर्थशास्त्र और समाज विज्ञान की पुस्तकों को महत्त्व देते हैं। उनके वर्गीकरण में कला, गल्प, कविता, नाटक इत्यादि का साहित्य तीसरा स्थान पाता है। इसके बाद केलकर एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण टिप्पणी करते हैं। कलाओं का आनंद लेने के लिए व्यक्ति को स्वतंत्रता और पर्याप्त आरामदेह जीवन की सुनिश्चितता होनी चाहिए। इससे रोमांटिक और रोमांटिकोत्तर काल के अंग्रेज़ कवियों की पर्याप्त सुखद आर्थिक स्थिति की याद आ जाती है।

अपने भाषण का अंत वे इस सुझाव के साथ करते हैं कि उत्तम साहित्य के प्रोत्साहन व प्रकाशन की ज़िम्मेदारी सरकार, विश्वविद्यालयों और सम्पन्न वर्गों पर है।

(५)

१९३७ में केलकर ने हास्य पर अपना लम्बा प्रबन्ध 'हास्य विनोद मीमांसा', प्रकाशित किया। प्रस्तावना में वे अपनी बहुत पूर्व की कृति 'सुभाषित आणि विनोद' (१९११) का हवाला देते हैं। 'इस पूर्ववर्ती रचना की अत्यधिक प्रशंसा हुई थी क्योंकि मराठी में इस विषय पर कोई किताब नहीं थी। इसलिए मेरी पुस्तक ने सरस्वती के मंदिर में एक नया कक्ष जोड़ दिया।'

इस परवर्ती प्रबन्ध में पूर्ववर्ती रचना का परिवर्द्धित संस्करण हैं, पुराने संस्कृत विद्वानों द्वारा वर्णित छः विभिन्न प्रकारों के हास्य और उनके द्वारा चेहरे पर आए परिवर्तनों का उल्लेख करते हैं। किसी व्यक्ति का हास्य उसके चेहरे की ही एक छोटे मोड़ की याद दिलाता है जबकि कुछ अन्य लोगों का पूरे गले से निकलता है और बड़ी चौमंज़िली इमारत के समान होता है।' इसके बाद वे सामाजिक अंतःक्रिया में व्यंग्य और उसके प्रयोग की परिभाषा करते हैं। 'सौंदर्य और स्वरूप कला की आत्मा है; व्यंग्य की आत्मा असंगति है।' 'कला प्रेरित नहीं होती जबकि हंसी होती है। सचमूच की हंसी में हंसने वाला इस बात के प्रति सचेत नहीं होता कि वह अपने आपको हंसी का पात्र बना रहा है, जबकि दूसरे सचेत होते हैं।'

दैनिक जीवन की छोटी समस्याएँ क्रोध या चिड़चिड़ाहट के बजाय

व्यंग्य से अधिक आसानी से हल हो जाती हैं। प्रत्येक व्यंग्यपूर्ण वक्तव्य में सत्य की तह होती है। इस सत्य को समझना बुद्धिमान होना है। व्यंग्य एक व्यक्ति से दूसरे तक पहुंचता है और फिर तीसरे तक। यह समाज को गुणी, बुद्धिमान, अपने कर्त्तव्यों और ज़िम्मेदारियों के प्रति सचेत बनने में सहायक होता है।'

फिर केलकर यह बताते हैं कि हास्य और रोदन एक ही चीज़ के दो पक्ष हैं। 'वे दोनों ही अत्यंत क्षुब्ध भावनाओं से छुटकारा दिलाते हैं।' अपने वक्तव्य के समर्थन में वे मार्क ट्वेन, जेम्स थर्बर और चार्ली चैपलिन से उद्धरण देते हैं। लेकिन कहीं भी वे इस बात का संकेत नहीं देते कि हास्य हमारी मानसिक प्रक्रियाओं से घनिष्ठ सम्बन्धित है। हास्य, आनंद, दुःख, विडम्बना, क्रोध, व्यंग्य-मखौल इत्यादि की अभिव्यक्ति कर सकता है, यह कटु अथवा मूर्खतापूर्ण हो सकता है। इस प्रकार यह अनेक मानवीय भावनाओं को व्यक्त करता है और क्षण विशेष में हमारी मानसिक अवस्था की अभिव्यक्ति है। एक ध्वनि का दूसरी से विभेद करना भरपूर गले के हास्य और मुश्किल से सुनाई पड़ने वाले हास्य एवं तदनुरूप चेहरे पर आए परिवर्तनों में विभेद करना ही काफी नहीं है।

(६)

केलकर ने साहित्यिक विषयों पर व्यापक रूप से लिखा है। उन्होंने उतने ही व्यापक रूप से अन्य विषयों पर भी लिखा है जो किसी जनगण के सांस्कृतिक जीवन का आधारभूत तत्त्व बनाते हैं। इनमें से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है शिक्षा। अपनी संग्रहीत रचनाओं के अंतिम खण्ड में, जिसमें सांस्कृतिक विषयों पर उनकी रचनाएं हैं, कुल २३४ लेख हैं। इनमें से लगभग साठ शिक्षा और इससे संबंधित विषयों पर हैं। इससे स्पष्ट होता है कि केलकर इस विषय को बहुत महत्त्व देते थे। इन लेखों में केलकर शिक्षा के प्रत्येक पहलू को शामिल करते हैं। ये लेख निम्नलिखित विषयों को समर्पित हैं: प्राथमिक, माध्यमिक और विश्वविद्यालय शिक्षा, नारी शिक्षा और पिछड़े वर्गों की शिक्षा, शिक्षा के सरकारी नियंत्रण या अन्यथा क्षेत्रीय विश्वविद्यालयों की वांछनीयता, मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा, मराठी भाषा में विदेशी शब्दों की समस्या, जनगण के सांस्कृतिक जीवन में पुस्तकालयों का महत्त्व, राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता। यह सूची पूरी नहीं हैं लेकिन इस विषय में केलकर की दृढ़ और बहुपक्षीय रुचि अच्छी तरह प्रदर्शित करती है।

इस खण्ड के सबसे महत्त्वपूर्ण लेखों में से एक है संस्कृत अध्ययन के पुनरुत्थान पर उनका लम्बा और विद्वत्तापूर्ण लेख। वे उचित ही यह बताते हैं कि संस्कृत मराठी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का मूल स्रोत थी और है। इस व्यापक प्रभाव को दिखाने के लिए वे समस्त भूखण्ड का भ्रमण करते हैं और देश के चारों कोनों में संस्कृत अध्ययन पर विहंगम दृष्टि डालते हैं। वे संस्कृत के अध्ययन को अपना

आजीवन पेशा बना लेने वाले, विदेशी विद्वानों को भावपूर्ण श्रद्धांजलि देते हैं और संस्कृत अध्ययन में आधुनिक विद्वानों के बहुमूल्य योगदान को स्वीकार करते हैं। यद्यपि योरपीय साहित्य में रोमांटिक आन्दोलन पर संस्कृत का प्रभाव उनकी नज़र से बचा रह जाता है फिर भी वे यह बताते हैं कि क्यों, किन ऐतिहासिक कारणों से संस्कृत का अध्ययन इंगलैंड की अपेक्षा फ्रांस और जर्मनी में अधिक फलाफूला।

पुस्तकालय सम्बन्धी अपने लेख में केलकर पुस्तकों और अध्ययन के बारे में चाव से बात करते हैं। वे सम्पन्न व्यक्तियों का आह्वान करते हैं कि वे अपना कुछ धन पुस्तकालयों की स्थापना में लगायें जहाँ लोगों को निःशुल्क और भरपूर ज्ञान दिया जा सके।

हमारे राजनीतिक संघर्ष की सम्पूर्ण रणनीति में राष्ट्रीय शिक्षा एक बहुत महत्त्वपूर्ण विषय था और केलकर ने इसके बारे में व्यापक रूप से लिखा है। पच्चीस वर्षों की स्वतंत्रता के बाद भी जब कोई हमारी शिक्षा व्यवस्था की दुःखपूर्ण स्थिति के बारे में विचार करता है तो उसे इस विषय का महत्त्व प्रत्यक्ष हो जाता है। 'भारतीय दर्शन' पर केलकर की पुस्तक १९४४ में प्रकाशित हुई। यह भारतीय दर्शन की विभिन्न धाराओं का संपूर्ण वर्णन है। अन्यथा साधारण इस पुस्तक का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग प्रस्तावना है क्योंकि वह लेखन के प्रति केलकर की सामान्य अभिवृति पर प्रकाश डालती है। वे कहते हैं : 'अपनी लिखी किताबों में मैंने केवल एक चीज़ ध्यान में रखी। यह बात थी प्रत्येक पहलू से किताब को पूर्ण बनाने का प्रयास न करना क्योंकि इसका परिणाम हो सकता था कि मैं कोई किताब लिखता ही नहीं। इसीलिए मैंने दूसरा रास्ता चुना, वह था उपयोगी किताबें लिखने का, भले ही विद्वत्ता और श्रेष्ठता की दृष्टि से वे सर्वोत्तम से नीचे के स्तर की हों।'

(७)

बड़ौदा के प्रो० वी० पी० डांडेकर के अनुसार उत्तम लेखन के बारे में केलकर के कुछ निश्चित मत थे। वे है :

(१) शैली की नकल करना असंभव है और इसलिए किसी को ऐसा प्रयास नहीं करना चाहिए। जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपनी ही शैली में बोलता और चलता है उसी प्रकार वह लिखता भी अपनी ही शैली में है।

(२) प्रत्येक लेखन पूर्ण नहीं बल्कि सुझावात्मक होना चाहिए। इसमें एक छोर से दूसरे छोर तक सारी चीज़ें नहीं शामिल करनी चाहिएं। वे लेसिंग का हवाला देते हैं : 'प्रत्येक कला अर्धपूर्ण होती है, पूर्ण नहीं।'

(३) लेखक को भावनाओं का शिकार नहीं होंना चाहिए, उसे अति-विस्तार से भी बचना चाहिए। (जीवन प्रसंग, पृष्ठ ११३)

(८)

केलकर के मित्रों और प्रशंसकों ने उन्हें 'साहित्य-सम्राट्' की उपाधि से विभूषित किया। यह देखने के लिए कि उनका साहित्यिक साम्राज्य सुव्यवस्थित एवं सुप्रशासित है, केलकर ने कुछ दिशा-निर्देशों की स्थापना के लिए कठिन प्रयास किया ताकि उनके साहित्यिक साम्राज्य के विभिन्न भाग, काव्य, गद्य, नाटक, आलोचना, इतिहास, दर्शन, पत्रकारिता, राजनीति अच्छी तरह क्रिया-शील हों। उन्होंने लेखन में सरलता एवं स्पष्टता रखी ताकि अधिकाधिक लोग उन्हें समझ सकें। उन्होंने किसी भी साम्राज्य के सामने नहीं झुकने वाले एस० वी० केलकर और अनुसरण-विरोधी आचार्य जवडेकर, जिनकी पुस्तक 'आधु-निक भारत' ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भारत के राजनीतिक एवं सामाजिक इतिहास पर एक क्लासिक कृति बन गई थी और अब भी है, दोनों ही की झक्की मानसिकता से अपने को बचाया। हिटलर के आगमन के बाद सारे साम्राज्यों का पतन हुआ और केलकर का साम्राज्य भी समय के अनिवार्य तर्क से बच नहीं पाया। लेकिन उन्होंने यथासम्भव स्पष्टता से किसी साम्राज्य के सामने आने वाली सारी, साहित्यिक अथवा अन्य समस्याओं की सरलतम अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया और अपने समस्त क्रियाशील जीवन में बुर्के की इस उक्ति को ध्यान में रखा कि बड़े साम्राज्य और छोटे मस्तिष्क एक साथ क्षीण हो जाते हैं।

अध्याय आठ

निबंधकार

केलकर पेशे से आजीवन पत्रकार बने रहे। 'केसरी' और 'मराठा' के संपादक के रूप में उन्हें प्रति सप्ताह किसी सामयिक विषय पर एक लेख लिखना पड़ता था जो जनता का ध्यान आकर्षित कर चुका था अन्य विषय जिनमें वे सोचते थे कि लोग रुचि लेंगे।

किसी समाचार पत्र का सफल संपादक उस जन-समूह को ध्यान में रखता है जिसके लिए वह लिखता है। केलकर के लेखों को पढ़ते हुए हम पर यह प्रभाव पड़ता है कि वे ऐसे जनसमुदाय के लिए लिख रहे हैं जो बहुत जानकार नहीं है और जानने के लिऐ लालायित है। लेखक रूप में अपनी क्षमता, अध्ययन प्रेम और इस अध्ययन में दूसरों को हिस्सेदार बनाने की अपनी आकांक्षा से केलकर ने अनेक लेखों को अल्पकालिक ज्वलंत विषयों के लोकप्रिय लेखन के निम्न स्तर से स्थायी रुचि के निबंध के स्तर तक पहुँचा दिया।

आइये हम केलकर की कार्य-प्रणाली देखें। पाठक का ध्यान आकर्षित करने के लिए वे हमेशा एक दिलचस्प शीर्षक का इस्तेमाल करते थे। हम एक पूर्ववर्ती अध्याय में इसके कुछ उदाहरण देख चुके हैं। अक्सर, एक दिलचस्प शीर्षक से शुरूआत करके और तुरन्त यह न बताकर कि लेख किस विषय में हैं, केलकर पाठक का असमंजस बनाये रखते हैं। मिस मेयो की किताब 'मदर इंडिया' पर अपने लेख की शुरूआत वे इस शीर्षक से करते हैं, 'ज़हरीले सांप का कुटिल दंश'। इतना ही पाठक की जिज्ञासा जगाने के लिए काफी है। केलकर लेख को इस प्रकार चालू रखकर असमंजस बनाए रखते हैं :' पिछले कुछ महीनों में भारत पर लिखी एक किताब योरप और अमरीका में सर्वाधिक सनसनीखेज़ सिद्ध हुई है। मुद्रकों ने अपना कागज़ भंडार खोल दिया है, प्रकाशकों ने अपना कोष निछावर कर दिया है, पाठक धैर्य खोलकर उसे खरीदने के निए टूट पड़े हैं। ऐसा क्यों घटित हुआ है ? इसलिए कि एक गोरी औरत ने अपनी सारी शर्म खो दी है।'

लेकिन केलकर यह तरीका तभी अपनाते हैं जब वे अपने साहित्यिक शस्त्रागार के समस्त उपकरणों से प्रहार करना चाहते हैं। इन उपकरणों का वे किस कुशलता से प्रयोग करते हैं, यह देखने के लिए हमें उनके द्वारा की गई खाडिलकर के नाटक 'मेनका' की समीक्षा देखनी चाहिए।

लेकिन केलकर के निबंधों की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता आलोचना की तीक्ष्णता नहीं है और न यह सबसे अधिक बांधने वाली बात है। उनकी विशेषता है विनम्रता, भद्रता, विद्वत्ता, विचाराधीन विषय का बहुपक्षीय अनुशीलन और उनकी व्यंग्यशक्ति। इन सभी गुणों का सर्वोत्तम समन्वय हम विधवा-पुनर्विवाह से सम्बन्धित उनके लेख में पाते हैं। आरंभ वे अत्यन्त विनम्रता के साथ करते हैं: अनेक अन्य लोगों की तरह मेरी भी समाज सुधार में आस्था है लेकिन इस पर मैंने गंभीर विचार नहीं किया है। समाज-विज्ञान का मेरा अध्ययन भी सीमित है। न तो इस विशेष सुधारकार्य के पक्ष में मैंने श्रम किया है और न इस लक्ष्य के लिए कोई कष्ट उठाया है। इसलिए इसके बारे में बातचीत करने के लिए अपने को उपयुक्त व्यक्ति नहीं मानता।' फिर वे कहते हैं, 'सार्वजनिक क्रियाकलाप के अनेक रूप हैं और व्यक्ति उनमें से अपनी रुचि के सर्वाधिक अनुरूप को ही चुनता है। रुचि की विभिन्नता का स्वागत किया जाना चाहिए क्योंकि यह श्रम-विभाजन की ओर ले जाती है। जो किया जाना चाहिए वह यह कि विभिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रहे व्यक्ति कोई वैचारिक दुराव न रखें और उचित होने पर स्वतंत्र रूप से और मुक्त हृदय से दूसरों को श्रेय दें। यह तथ्य भी बहुत सहायक हो सकता है कि ऐसे लोग यदाकदा एक साथ आएं और कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करें,' हमेशा की ही भांति केलकर एक रोचक उदाहरण से अपना विचार स्पष्ट करते हैं। हम सभी सामाजिक कृषि में लगे हुए किसानों की तरह हैं। हम सभी का कार्य समान रूप से मूल्यवान भले न हो, वह समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। कुछ लोग ज़मीन तैयार करेंगे, दूसरे बीज बोएंगे, और कुछ अन्य लोग पौधों को पानी देंगे।'

इस विनम्र प्रस्तावना के साथ केलकर अपने मुख्य विषय पर आते हैं। वे समस्या पर किसी विशेष दृष्टिकोण के समर्थन के रूप में नहीं बल्कि परम्परा और धार्मिक सिद्धांतों, व्यक्ति और समाज के दृष्टिकोण से विचार करते हैं और देखते हैं क्या एक सर्व-स्वीकार्य दृष्टिकोण तक पहुँचा जा सकता है। इस सुधार के समर्थन के लिए किसी व्यक्ति की दृष्टि सबसे पहले धार्मिक स्वीकृति की ओर पड़ेगी। लेकिन धार्मिक सिद्धांत वा शास्त्र एक रूप नहीं है और प्रत्येक युग में बदलता रहता है।

ऐसा इसलिए है कि प्रत्येक धार्मिक सिद्धांत अनेक परस्पर विरोधी विचारों और मताग्रहों में विभाजित हो जाता है। केलकर इस प्रक्रिया को स्पष्ट करने के

लिए हमारी विधान सभाओं द्वारा पारित अनेक अधिनियमों के परिणामों को सामने रखते हैं। 'राजकीय कानून विभाग सार्वजनिक निर्माण विभाग की ही तरह है। जब तक किसी सार्वजनिक इमारत का एक भाग तैयार होता है, दूसरे की मरम्मत करना जरूरी हो जाता है। इसी प्रकार कानून और इसकी व्याख्या के बीच निरंतर प्रतियोगिता चालू है। जिस प्रकार टूटे हुए शीशे के बर्तन ग्लास फैक्टरी में पुनः पिघलाने के लिए और फटे कपड़े रफू के लिए भेज दिए जाते हैं, उसी प्रकार जो कानून टूट चुके हैं या असंगत सिद्धांत हुए हैं उनको आवश्यक सुधार के लिए हमेशा कौंसिल के पास भेजा जा रहा है। लेकिन क्या यह प्रक्रिया कभी सम्बन्धित दलों को पर्याप्त संतुष्ट कर पाई है ?'

'यदि अत्यधिक सावधानी और विधि-ज्ञान के साथ बनाए गए वर्तमान विधानों का यह परिणाम होता है तो किसी प्राचीन धार्मिक विधान से कोई कैसे यह आशा कर सकता है कि वह किसी विवादास्पद विषय पर सर्वमान्य अंतिम निर्णय दे सकेगा। इसीलिए शास्त्रों के सभी निर्देश अंततः उस चीज़ पर केन्द्रित हो जाते हैं जिसे किसी समय विशेष में अच्छे आचरण की संहिता के रूप में सामान्यतः स्वीकार किया जाता है। लेकिन यहां भी पुराने और नये का संघर्ष उपस्थित होता है क्योंकि जनमत वर्तमान प्रथाओं और शास्त्रों दोनों ही को आगे बढ़ाने के पक्ष में है।'

इस प्रकार केलकर इस विशेष सुधार के लिए शास्त्रों में स्वीकृति खोजने की व्यर्थता की ओर संकेत करते हैं। प्राचीन धार्मिक सिद्धांतों द्वारा निंदित सैंकड़ों विभिन्न कार्य या तो हम स्वयं करते हैं या वैसा होने देते हैं। इसलिए विधवा-पुनर्विवाह के विरुद्ध धार्मिक आपत्ति उठाना उचित नहीं है। दूसरे, जो लोग आज विधवा-पुनर्विवाह का समर्थन करते हैं, वे ऐसे लोग हैं जिनको सभी समाज के नेता के रूप में सम्मान देते हैं और जिनके बेदाग चरित्र के बारे में कोई सवाल नहीं उठाया जा सकता। परिवर्तन की एक नई हवा देश के आर-पार बह रही हैं और राजनीति के क्षेत्र में स्वीकृत स्वतंत्रता और समानता के विचार सामाजिक सुधार के क्षेत्र तक अनिवार्यतः फैलेंगे।

'हमारा ऐसा विश्वास नहीं है कि विधवा-पुनर्विवाह के सर्व-स्वीकृत हो जाने पर सरकार एक तश्तरी में हमें राजनीतिक स्वतंत्रता दे देगी। लेकिन इतना अवश्य है कि विधवा-पुनर्विवाह में निहित सामाजिक अन्याय के एक रूप का अंत कर देने का संतोष हम प्राप्त करेंगे।'

इस प्रकार केलकर धर्म और प्रथा के द्विपक्षीय विचार-विमर्श को विचाराधीन विषय के साथ कुशलता से जोड़ देते हैं। यह संकेत करते हुए वे लेख का समापन करने की ओर बढ़ते हैं कि शिक्षा प्रसार के साथ इस सुधार के प्रति सहानुभूति में भी वृद्धि होगी। जो निर्णय करना रह जाएगा वह यह कि किन

सीमाओं के अंतर्गत इसकी अनुमति दी जाए।

उपरोक्त लेख का यह अपेक्षाकृत लम्बा सारांश निबंधकार के रूप में केलकर के गुणों को सामने लाता है। लेख का आरंभ करते हुए वे बड़ी विनम्रता से यह कहते हैं कि वे विषय के बारे में अधिक नहीं जानते। फिर वह अपनी तर्कनाओं को गहन अध्ययन से पुष्ट करने के लिए शास्त्रों से विस्तृत उद्धरण देते हैं जिनको स्वीकार करना कुछ लोगों के लिए कठिन हो सकता है। वे बताते हैं कि रीति-रिवाज़, शिक्षा और वर्तमान सामाजिक विधान किस प्रकार प्रत्येक सुधार को प्रभावित करते हैं। वे कुशलता से उपरोक्त विचार-विमर्श को विधवा-पुनर्विवाह के सवाल से जोड़ देते हैं और उन सीमाओं की ओर भी संकेत करते हैं जिनमें इसे तुरन्त स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। अपनी प्रस्थापना को वे रोचक और व्यंग्यपूर्ण उदाहरणों से स्पष्ट करते हुए अपना दृष्टिकोण पुष्ट करते हैं, जैसे कानून विभाग की तुलना सार्वजनिक निर्माण विभाग से अथवा स्वतंत्रता की आकांक्षा की तुलना सागर की ऊंची लहरों से करते हैं जो सभी नदियों और नहरों को अपने में समा लेती हैं और तटबंधों से टकराती हैं।

उपरोक्त निबंध केलकर के विचारों की सीमाएं भी दिखाता है। इस लम्बे और सुगठित लेख में कहीं भी हम इस अंध सामाजिक प्रथा की शिकार असहाय हिन्दू विधवा का दयनीय और हृदय-द्रावी रुदन नहीं सुनते। इस विषय पर आगरकर के अनेक लेखों को ध्यान में रखा जा सकता है जिनका प्रत्येक पृष्ठ इन अभाग्यशाली महिलाओं का रुदन प्रतिध्वनित करता है और जिनका प्रत्येक वाक्य इस क्रूर सामाजिक प्रथा पर चोट करता है। केलकर के इस निबन्ध के बारे में हम क्या वही नहीं कह सकते जो टोन पाइन ने एक अन्य संदर्भ में बुर्के के बारे में कहा था, 'वह पक्षी पर दया करता है लेकिन मरणासन्न पक्षी को भूल जाता है।'

अपने पुराने शिक्षक वासुदेव शास्त्री खरे के जीवन एवं कृतित्व की समीक्षा करते हुए केलकर वही गुण दिखाते हैं। वे इस दिलचस्प वक्तव्य से आरम्भ करते हैं कि इस किताब के साथ खरे शास्त्री का पुनर्जन्म हुआ है। लेकिन यह एक व्यक्ति एक पुस्तक का लेखक है, कोई औरत नहीं जिसने उन्हें दूसरा जन्म दिया है और उसी सावधानी के साथ और प्यार से उनकी देखभाल की है जैसे कि उनकी मां करती। फिर वे इतिहास और कलाओं के अध्ययन में खरे के योगदान की विस्तारपूर्वक समीक्षा करते हैं और निष्कर्ष देते हैं कि खरे इतिहास की अपेक्षा कलाओं के अधिक निकट हैं। इस विचार को पुष्ट करने के लिए वे खरे तथा अन्य समकालीन इतिहासकारों के बीच तुलना करते हैं जो सूक्ष्म व्यंग्य की अचूक क्षमता का परिचय देती है। कलाओं के प्रति खरे एवं राजवाडे के दृष्टिकोणों की तुलना करते हुए केलकर कहते हैं, 'संगीत के प्रति राजवाडे की घृणा की तुलना

सिर्फ औरंगजेब से की जा सकती है। उनके अनुसार संगीत-प्रेम एक अर्जुन को भी वृहन्नला में बदल सकता है। इसके विपरीत शास्त्रीबुआ की प्रतिभा बहु-पक्षीय थी। कलाओं के प्रति प्रेम की ही वजह से हम शास्त्रीबुआ की अनेक ऐतिहासिक कृतियों में सत्य एवं सुन्दरता का मनोरम समन्वय पाते हैं।'

महामहोपाध्याय दत्तो वामन पोतदार उन्हें आधुनिक निबन्ध-लेखकों में महानतम मानते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि केलकर अपने किसी भी लेख में व्यक्तिगत विशेषता नहीं ला सके। राबर्ट लिंड या ए० जी० गार्डिनर की तरह निबंध-रचना में व सर्वथा अक्षम हैं। लैंब की रचना 'डिसर्टेशन आन ए रोस्ट पिग' जैसी मनोरम कोई चीज़ उनके द्वारा लिखे जाने की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। एक अच्छे पत्रकार की हैसियत से वे शिक्षित करने, समझाने-बुझाने और विरोधियों की धार कुंद करने में कुशल हैं। बुर्के की ही तरह वे एक सांप की भांति विषय में प्रवेश करते हैं और विभिन्न पक्षों से उसका अवलोकन करते हुए धीरे-धीरे पाठक को अनिवार्य निष्कर्षों तक ले जाते हैं।

'भविष्य का पूर्वानुमान' जैसे कुछ लेखों में केलकर एडिसन की याद दिलाते हैं। एडिसन की ही तरह वे वर्तमान अंधविश्वासों का सहज मज़ाक उड़ाते हैं और एडिसन की तरह नीति-कथन देते हैं। महिलाओं के केश-विन्यास पर लिखते हुए एडिसन ने टिप्पणी की थी कि महिलाएं अपने सिर के उस भाग से ज्यादा सरोकार महसूस करती हैं जिसे बाह्य भाग कहा जाता है। उसी सहज व्यंग्यभाव से केलकर ज्योतिषियों और ज्योतिष में आस्था रखने वालों की बात करते हैं, 'जो भविष्य का पूर्वानुमान कर लेने का दावा करते हैं उन्हें अपनी जाति के नष्ट होने का डर नहीं होना चाहिए क्योंकि उनके श्रद्धावान अनुयायी कभी खत्म नहीं होंगे।'

अध्याय नौ

मराठी गद्य के शिल्पी

ब्रिटिश राज्य की स्थापना और परिणामस्वरूप एक विदेशी संस्कृति से सम्पर्क के बाद मराठी गद्य इस सीमा तक परिवर्तन की प्रक्रिया से गुज़रा कि महामहोपाध्याय वामन पोतदार ने इसके बारे में एक पुस्तक लिखना आवश्यक समझा। स्वयं केलकर ने ब्रिटिश पूर्व काल में समकालीन 'अखबारों' से मराठी गद्य के कुछ नमूनों की पुनर्रचना की है जो दिखाते हैं कि १८०० से १९०० तक के सौ वर्षों में मराठी गद्य कितना बदल गयाथ ा।

ब्रिटिश राज्य की स्थापना के बाद बहुत से शिक्षित व्यक्तियों ने हो रहे परिवर्तनों से जनता को सूचित करना अपना कर्त्तव्य समझा। प्रिंटिंग प्रेस की सुविधा के कारण इसका आसानतम तरीका था लिखित शब्दों में अभिव्यक्ति। चूंकि अधिकांश जनता अल्पशिक्षित थी इसलिए उनको उसी माध्यम से शिक्षित करना था जिसे वे समझ सकते थे। इसलिए भाषा को बहुत सरल होना चाहिए था, ऐसे शब्दों और पदों के प्रयोग के साथ जिसे एक बच्चा भी समझ सके। इस प्रकार इन प्रारंभिक लेखकों ने जो भाषा प्रयुक्त की वह अपने दृष्टिकोण में ठहरी हुई, कभी-कभी कुछ गति के साथ, सामान्यतः परिचित शब्दों और पदों का प्रयोग लिए हुए और बराबर समर्थन के लिए लालायित मिलती है।

केलकर ने जब 'केसरी' और 'मराठा' के साथ अपने को जोड़ा तब तक मराठी गद्य का चरित्र पूर्णतः बदल चुका था। अपने को मराठी भाषा का शिवाजी कहने वाले विष्णुशास्त्री चिपलूणकर ने इसे आधुनिक विचारों का गरिमामय और परिष्कृत वाहन बना दिया था। उन्होंने मराठी गद्य में संस्कृत के मुहावरों का समावेश किया और इसे क्लासिक शब्दविधान से मंडित और समृद्ध किया। अब हम इसमें मैकाले की भी प्रतिध्वनि सुनते हैं जो चिपलूणकर का प्रिय व्यक्तित्व था। चूंकि चिपलूणकर का लक्ष्य जनता का स्वाभिमान और आत्मविश्वास बढ़ाना था, उन्होंने विशेष उत्साह से लेखन कार्य किया और हमारे देश की दशा से लेकर हमारी भाषा की स्थिति तक के विषयों पर उनके लेखों ने

पाठकों के दिमाग पर महान् प्रभाव छोड़ा। उनकी 'निबंधमाला' पुस्तक इतनी लोकप्रिय हुई कि लोगों ने महीनों-महीनों उसके प्रकाशन की प्रतीक्षा की।

मराठी गद्य को समृद्ध करने वाले केलकर के एक अन्य पूर्ववर्ती थे आगरकर। उनके देशी व्यंग्य और रूमानी शैली ने मराठी गद्य में एक नई प्रवृत्ति की शुरूआत की। आवश्यकता पड़ने पर चालू, परिचित पदों और शब्दों, बाज़ारू मुहावरों का इस्तेमाल करने से वे नहीं हिचकिचाए। लेकिन उन्होंने महान् उत्साह से लेखन किया और आक्रमण या आत्मरक्षा दोनों में ही बराबर आसानी से अपनी कलम का प्रयोग किया।

तिलक के पास अपनी स्वयं की शैली थी। वे अपनी गद्य रचना को अलंकारों से सजाने में अपना समय नष्ट नहीं करते थे। उनके बारे में केलकर कहते हैं: 'इन लेखों के पाठक तिलक की कल्पना लिखने की मेज़ पर कलम लिए हुए नहीं कर सकेंगे। वे तिलक को (दर्शकों के सामने) खड़ा, तेज़ आवाज़ में बोलते और प्रत्येक महत्त्वपूर्ण शब्द और पद पर ज़ोर देते हुए देखेंगे। उन लेखों में प्रेरणादायी शब्द प्रवाह देखा जा सकता है और वे सीधे दिल पर असर करते हैं। (तिलक के संग्रहीत लेखों की प्रस्तावना) जैसा एक पूर्ववर्ती अध्याय में कहा जा चुका है, तिलक के लेखन में गणितीय सटीकता थी जो न्यूनतम शब्द प्रयोग से अधिकतम प्रभाव पैदा करती थी।

केलकर ने इनमें से किसी भी शैली का अनुसरण नहीं किया। विष्णुशास्त्री की मराठी अत्यधिक आलंकारिक और कृत्रिम थी जो केलकर की प्रकृति के विपरीत बैठती थी। वे आगरकर का व्यंग्यात्मक और रूमानी गद्य पसन्द करते थे लेकिन उनका विचार था कि आगरकर की सहजता उनके व्यंग्य के साथ खत्म हो जाती और वे ऐसे कुत्सित रूपों का प्रयोग करते थे जो केलकर की परिष्कृत रुचि के विपरीत थे।

तिलक एक बिलकुल ही भिन्न विचार रखते थे। उनके लिखने का एकमात्र उद्देश्य था कि लोग उनकी बहुत कुछ खतरनाक और नवीन राजनीतिक प्रस्थापना स्वीकार कर लें। अपने विरोधियों के साथ उन्होंने कोई मुरव्वत नहीं दिखाई। जब भी वे प्रहार करते थे, वह प्रहार सांघातिक होता था। यह शैली भी ऐसी थी जिसे केलकर नहीं अपना सकते थे। उनके लिए भाषा विचार और सौंदर्य दोनों ही की वाहिका थी। जबकि तिलक विरोधी को ध्वस्त कर देने के लिए प्रहार करते थे, केलकर समझाने-बुझाने के लिए धैर्यपूर्वक तर्क देते थे। इसलिए केलकर को अपनी स्वयं की शैली विकसित करनी थी। हफ्ता-दर-हफ्ता, केसरी के स्तंभों के ज़रिए धीरे-धीरे उन्होंने अपनी रुचि और स्वभाव के अनुरूप एक शैली का विकास पूरा किया: यह शैली सुसंस्कृत, बोधगम्य, शब्दालंकृत, हरेक रंगत के विचारों को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त लोचदार और स्वयं में अत्यन्त आकर्षक थी। उनके

माध्यम से मराठी गद्य स्वयं, शब्दों और बिम्बों से क्रीड़ा करने लगा। विचारों का वाहन बनने के अलावा भाषा ने अब अपना ही गुण, रंग और स्वाद विकसित कर लिया। उनका व्यंग्यबोध अलग ही आकर्षण रखता था। केलकर के आलोचनात्मक निबंधों की समीक्षा करते हुए वामन मल्हार जोशी उनके प्रति प्रेमपूर्वक दो शिकायतें रखते हैं : एक यह कि उनके विचार इतने संतुलित हैं और विरोधी को इतनी पूर्णता से आच्छादित कर लेते हैं कि आलोचक के लिए बहुत कम ही चीज़ आलोचना करने के लिए रह जाती है। उनकी दूसरी शिकायत केलकर की भाषा के बारे में है। 'उनके रूपक और अलंकार इतने पूर्ण और उनकी भाषा इतनी सजी-बजी; सुपरिवेष्टित और आवश्यक है कि आलोचक आलोचना का अपना मुख्य कार्य भूल जाता है और उसके सौंदर्य की प्रशंसा में खो जाता है।' (केलकर स्मृति खण्ड १९३२, पृष्ठ २८-२९)

इसमें कोई संदेह नहीं कि केलकर के व्यापक अध्ययन, पुराने और नये सभी यूरोपीय तथा हमारे अपने साहित्य से परिचय, इतिहासबोध, प्रत्येक दृष्टिकोण को समझने के लिए उनका सतत प्रयास, इन सबने उनकी शैली को प्रभावित किया। लेकिन वे जीवन से प्यार करते थे और उसका आनंद लेते थे और उनकी शैली भी परोक्ष रूप से इस आनंदबोध से प्रभावित होती थी। मनुष्य की प्रकृति से मनुष्य के सम्बन्ध की और मनुष्य-से-मनुष्य के सम्बन्ध की समस्या में उनकी रुचि थी। वे इतने बहुमुखी व्यक्तित्व थे कि जीवन की इन सभी प्रक्रियाओं को अपनी आंखों के सामने गुज़रते हुए वे सहानभूति और व्यंग्य से देखते थे। समरसेट माम की एक कहानी के 'श्री सर्वज्ञ' की तरह उनका झुकाव मनुष्य की कमज़ोरियों के लिए दंडित करने के बजाए क्षमा कर देने की ओर था। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि उनकी समस्त कृतियों में हम 'फिर भी' और 'दूसरी ओर' जैसे शब्द पाते हैं।

अपनी विशिष्ट शैली के विकास में केलकर ने अपने निकट पूर्ववर्तियों द्वारा भाषा को दी गई साज-सज्जा में पहले के अन्य लेखकों की सरलता भी जोड़ दी। वे अपनी तर्कनाओं को उन वस्तुओं और बिम्बों से सजाते हैं जो हम सभी के लिए परिचित हैं। रोज़मर्रा व्यवहार की वस्तुएं, खाने की चीज़ें, कपड़, गहने, पूज्य देवता, खेल जैसे मुक्केबाजी, ताश, खो-खो से वे अपनी उपमाएं और अलंकार प्राप्त करते हैं। स्वर्णमुद्रा पर अपने भाषण में वे वित्तमंत्री को सशर्त खेल खेलने के लिए आमंत्रित करते हैं। जस्टिस रानाडे की राजनीतिक भूमिका पर अपने लेख में वे बताते हैं कि शब्द मनुष्य के मस्तिष्क तक कैसे आते हैं जब परिस्थितियाँ उनको ग्रहण करने के लिए परिपक्व होती हैं। एक विशेष समय में दादाभाई नौरोजी द्वारा स्वराज शब्द का प्रयोग आकस्मिक नहीं था। वे इस बात को एक

बहुत रोचक रूपक से स्पष्ट करते हैं। रेलवे के डिब्बे में यात्रियों की भाँति शब्द और परिस्थितियाँ भी उपयुक्त स्थान के लिए एक दूसरे से संघर्ष करते हैं।'

केलकर पुराण कथाओं की ही तरह उपमाओं का प्रयोग करने में आनंद लेते हैं। 'यदा कदा इतिहास के पर्वत पर चढ़ना और ताज़ी हवा में सांस लेना उचित है। लेकिन हमें याद रखना चाहिए कि कोई पर्वत की चोटी पर हमेशा रुककर ताज़ी हवा में सांस नहीं ले सकता। हर व्यक्ति जीवन भर निचले अंचलों के दूषण से मुक्त पर्वत की चोटी पर रहना पसन्द करेगा। लेकिन ऐसा संभव नहीं है। यही बात इतिहास से आनंद लेने के बारे में भी है।' वे एक अन्य उपमा से बात चालू रखते हैं। इतिहास मनुष्य को समस्त संचित ज्ञान सुनहरे पिंड के रूप में अर्पित करता है। लेकिन उस सोने का कैसा प्रयोग हो, कहां किस कीमत पर उसे बेचा जाए, इस चीज़ का फैसला करने के लिए उसे अपने विवेक का प्रयोग करना चाहिए। (ऐतिहासिक घटनाओं और वर्तमान परिस्थितियों पर विचार, 'केसरी जून १२,१९१७)

कभी-कभी केलकर एक उपमा की सहायता से कोई विचार स्पष्ट कर देते हैं। तिलक की पुस्तक 'वेदों में आर्कटिक आवास' के बारे में लिखते हुए वे कहते हैं, 'यह मानना पड़ेगा कि तिलक और डा० वारेन जैसे योरपीय विद्वानों ने आर्य जाति पृथ्वी के प्रथम निवासियों का पालना काकेशस पर्वत की चोटी से उठाकर उत्तरी ध्रुव पर फेंक दिया है।'

शिमला से लिखे एक संवाद में केलकर हिमालय के सौंदर्य की तुलना सह्याद्रि से करते हैं : 'हिमालय की तराई के पेड़ ५० से ७० फुट लम्बे हैं। लेकिन उनकी शाखाएँ जमीन से १० फुट की ऊंचाई पर फैली हैं, इसलिए उनकी छाया में आराम से चला-फिरा जा सकता है। सह्याद्रि के जंगल हमें ग्रीष्म ऋतु में नंगे रोमयुक्त धड़ की याद दिलाते हैं जबकि हिमालय के वन हमें एक सार्वजनिक सभा की याद दिलाते हैं जहाँ अचानक अप्रत्याशित बौछार से बचने के लिए लोग सिर ढकने के लिए तेज़ी से अपना छाता खोल लेते हैं।'

अपनी यात्राओं के दौरान केलकर ने पूर्वी बंगाल, आज के बंगलादेश की यात्रा की। समस्त ग्रामांचलों में फैली हुई अनेक नदियों के व्यापक विस्तार से चकित होकर उनकी कल्पना खो जाती है। 'इलाहाबाद में गंगा वेणीयुक्त गंगा कही जाती है जबकि पूर्व बंगाल में गंगा की मुक्तधारा मानी जाती है जिस किसी ने पूर्व की गंगा और पश्चिम की गंगा को देखा है।' इस वर्णन से सहमत होगा। पहले में केवल दो वेणियां गंगा और यमुना दिखाई देती हैं लेकिन पूर्व में जब गंगा के पहले से ही विस्तृत कछार से सोना और ब्रह्मपुत्र जुड़ती हैं तो इस नदी का प्रवाह उस स्त्री का चित्र उपस्थित करता है जो अपने घने और लम्बे बालों का सौंदर्य बढ़ाने के लिए एक और अतिरिक्त वेणी लगा लेती है।'

अनेक अवसरों पर केलकर आश्चर्यजनक लेकिन उपयुक्त बिम्बों के जरिए आनंद देते हैं। अपने लंदन प्रवास में वे हाऊस आफ कामन्स गए। वे लिखते हैं, 'वित्तमंत्रियों की गद्दियां पूर्ण अंधेरे में थीं। उस साम्राज्य का व्यापार जिसका सूरज कभी नहीं डूबता, इस अंधेरे कोने से चलाया जाता है। वे लोकोक्ति वर्णित अंग्रेजी मौसम के बारे में भी लिखते हैं, 'क्या रोशनी और बारिस लगातार एक दूसरे से आंखमिचौनी खेलते हैं। स्थानीय लोग कभी इस बात पर ध्यान नहीं देते और कभी छाते का प्रयोग नहीं करते। लेकिन इस बात का भलीभांति ध्यान वे रखते हैं कि उनका (साम्राज्यी) छाता सारी दुनिया के ऊपर हमेशा बने रहे।' आप पूछ सकते हैं संवाद में मौसम पर विचार क्यों। लेकिन अंग्रेजी रीति-रिवाज के अनुसार यहां आप किसी भी विषय पर मौसम के बारे में कुछ प्रारंभिक टिप्पणियां किए बिना बात नहीं करते।'

कभी आपने भगवद्गीता की तुलना एक दुकान से होते सुनी है। तो सुनिए, 'महाभारत युद्ध के पहले का शांतिपर्व, गीत की ही तरह दार्शनिक विचारों का भंडार' माना जाता है। लेकिन एक व्यापारी की तरह जो थोक और खुदरा भंडार रखता है, गीता थोक भंडार और शांतिपर्व तथा एक-दो अन्य पर्व खुदरा दुकानें हैं। लेकिन इसका आशय यह नहीं कि थोक भंडार होने की वजह से गीता में एक ही किस्म का माल है, इसमें सभी तरह का भंडार है।'

इस प्रकार अनगिनत उद्धरण दिये जा सकते हैं क्योंकि केलकर की बिम्ब-रचना-शक्ति और उससे हमें मिलने वाले आनंद का कोई अंत नहीं है। जोशी की यह शिकायत हम पहले ही सुन चुके हैं कि केलकर इतना अच्छा लिखते हैं कि अक्सर हम यह भूल जाते हैं कि वे किसी चीज़ के बारे में लिख रहे हैं। एक अधिक विनम्र मूल्यांकन करते हुए बड़ौदा के दाजी नागेश आप्टे एक खत में लिखते हैं, 'प्रेमपूर्ण कथन, विशिष्ट और चुनिंदा अलंकारों का आकर्षण, कटु लेकिन मनोहर व्यंग्य; प्रत्येक समस्या का सर्वपक्षीय अवलोकन तथा मैत्रीपूर्ण सहानुभूति से विवादों को निपटाने की आदत ने आप को विद्वानों में प्रथम स्थान दिला दिया है।'

केलकर के गद्य के बारे में काकासाहेब कालेलकर लिखते हैं, 'मैं सचमुच ही विश्वास करता हूं कि तात्या साहेब (केलकर) का गद्य विष्णुशास्त्री या तिलक से कहीं अधिक परिष्कृत और प्रभावशाली है। उन्होंने इतने भिन्न विषयों पर इतने व्यापक रूप से लिखा है और जो कुछ उन्होंने लिखा है वह इतना सुन्दर है कि मराठी भाषा के अध्ययन में लगा हुआ कोई भी व्यक्ति केलकर को पढ़े बगैर नहीं रह सकता।' (जीवन झांकी, पृष्ठ १९९)

केलकर की मराठी गद्य शैली पर विचार करते हुए यह संभव है कि कोई व्यक्ति भूल जाए कि 'महरट्टा' के सम्पादक के रूप में केलकर ने अंग्रेजी में भी

व्यापक लेखन किया। दादा भाई नौरोजी और फिरोज शाह मेहता के केलकर द्वारा शब्द चित्र हम पहले ही प्रस्तुत कर चुके हैं। एक स्थान पर वे समाचार पत्र-सम्पादकों और पाठकों के बारे में लिखते हैं: 'समाचार निश्चय ही एक अर्थहीन मेला है लेकिन स्वयं सम्पादक इसमें सबसे कम महत्त्वपूर्ण प्रदर्शनीय वस्तु है।' 'पाठक समुदाय में से अनेक लोग जब किसी अखबार के ग्राहक बनते हैं, स्वतंत्र निर्णय का अपना अधिकार भी गिरवी रख देते हैं। विश्वास के आधार पर राय लेने की आदत इतनी बढ़ जाती है कि गिरवी कभी चुकाई नहीं जाती।' (प्रकाशन जगत के शेर)। 'ईसा की ऐतिहासिकता' नामक लेख के उपसंहार में वे कहते हैं 'मिथकों के रसातल और देव ताओं के उच्च आसन के बीच एक आरामदेह घर है। इस मध्यवर्ती आवास में ही जहां तर्कना बसती है और सहानुभूति दोनों आत्यंतिक अंचलों के शरणार्थियों का स्वागत करती है, ईसा को सहज रूप में पाया जा सकता है।'

वृद्धावस्था के बारे में बात करते हुए अपनी आत्मकथा में वे लिखते हैं:

'वृद्धावस्था जाड़े की भोर के तारे की रोशनी की तरह है। उस समय भूदृश्य देखने के लिए पर्याप्त प्रकाश तो होता है लेकिन वह प्रकाश चमकीले सूर्य का प्रकाश नहीं होता। जाड़े की सुबह डूबता चाँद जानता है कि वह पुनः तरुण और प्रकाशवान होगा। जाड़े के दिनों के बाद भी अनिवार्यतः वसंत और गर्मी आते हैं। लेकिन वृद्धावस्था की शीत ऋतु जीवन में केवल एक बार आती है और हमेशा आखिरी होती है।' (आत्मकथा, पृष्ठ ४) यह आश्चर्य की बात नहीं है कि केलकर को पढ़ते हुए हम पर एक ऐसे व्यक्ति का प्रभाव पड़ता है जो सुखी, संतुष्ट और अपने परिवेश के प्रति अच्छी तरह सचेत है, एक व्यक्ति जो जीवन के बारे में इतना जानता है कि जड़ सूत्र-वादी नहीं हो सकता, जो ज्ञान और कलाओं से प्यार करता है और अपने मस्तिष्क में बराबर उठने वाले विचारों और बिम्ब को समुचित भाषा में बांधने की दुर्लभ क्षमता रखता है। उनकी शैली हमें अपने परिवार और मित्रों से घिरी हुई एक सुसंस्कृत और साफ-सुथरे वस्त्रों वाली महिला की याद दिलाती है। विवाहित और बच्चों वाली होने के बावजूद वह अभी इतनी जवान है कि अत्यंत आकर्षक लगती है। यदा-कदा हल्की चोंचले-बाजी के विपरीत नहीं लेकिन उसकी विनोदशीलता उसे दुष्टता से दूर रखती है और जहां कहीं वह जाती है, शांति और सौंदर्य भावना का शासन होता है।'

केलकर का देहावसान १४ अक्तूबर १९४७ की रात हुआ। कलम से उनका ज़िन्दगी भर साथ रहा, कलम लिए हुए ही वह मरे भी। १५ अक्तूबर की सुबह उनकी पुत्रवधू को उनकी लिखने की मेज़ पर उनका चश्मा, उनका कलम और

एक कागज़ मिला जिस पर मृत्यु के स्वागत में एक कविता लिखी गई थी :

'मैं मृत्यु को आते देख रहा हूं लेकिन वह मुझे डरा नही सकती ।
मैं वहुत पहले से जानता हूं कि किसी दिन वह मुझे मिलेगी ।
जो कोई भाला हाथ में लिए ये जंगल में प्रवेश करता है
शेर से डरता नहीं वल्कि मुस्करा कर स्वागत करता है ।'

'पंचभूतों ने मुझे जन्म से मृत्यु तक जीवित रखा । यह एक ऋण है जिसका भुगतान होना चाहिए/मेरे लिए यह काफी है/कि उनकी सहायता से मैंने एक पूर्ण सुखमय जीवन जिया है/उनको भुगतान करने का एक ही तरीका है/कि उनके द्वारा दिया गया जीवन उन्हें वापस कर दिया ।'

अध्याय दस

पञ्च लेख

पिछले अध्यायों में राजनीतिक विषयों के लेखक के रूप में केलकर के बारे में कुछ नहीं कहा गया है। यद्यपि केलकर आजीवन पत्रकार बने रहे और राजनीति को पत्रकार का पहला सरोकार माना था, फिर भी वे राजनीतिज्ञों की अपेक्षा विद्वानों के बीच ज्यादा आत्मीयता महसूस करते थे यही कारण है कि समकालीन राजनीतिक चिंतन के क्षेत्र में योगदान के लिए उनकी साहित्य तथा साहित्यिक विषयों की अपेक्षा कम श्रेय मिलता है। फिर भी अपने सार्वजनिक जीवन के प्रमुख काल में इस देश में उत्पन्न महानतम व्यक्तियों में से एक तिलक के विश्वस्त सहकर्मी थे। यद्यपि तिलक अद्वितीय प्रतिभाशाली व्यक्ति और विश्वविख्यात विद्वान् थे, देशवासी उन्हें राजनीतिक नेता के रूप में ही देखते थे जिसने राजनीतिक स्वतंत्रता की ओर भारत के अभियान को तेज करने के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी थी। तिलक से उनके लम्बे साहचर्य के कारण लोग उनको राजनीति में तिलक का स्वाभाविक उत्तराधिकारी मानते थे और तिलक की मृत्यु के बाद उनसे नेतृत्व की अपेक्षा करते थे। तिलक के छोड़े हुए कार्यभार को आगे बढ़ाने का काम उनके बाद आने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए एक बड़ा बोझ हो सकता था। यह केलकर जैसे आचार-विचार वाले व्यक्ति के लिए और भी जटिल कार्य था क्योंकि उनके राजनीतिक विचार तिलक के विचारों से हमेशा ही मेल नहीं खाते थे। दरअसल, एक बार तो ये मतभेद इतने उग्र हो गए कि यह अफवाह भी फैल गयी कि केलकर तिलक को छोड़कर गोखले के नरम दल में प्रवेश ले लेंगे।[1] केलकर अपनी सीमाओं के बारे में भी सचेत थे इतनी ईमानदारी उनमें थी कि वे ऐसी चीज़ न कहें जो वे सचमुच नहीं चाहते हों। वे यह भी जानते थे कि उनमें एक महान नेता के गुण नहीं थे। नियति

---

१. अधिक विस्तृत विवरण के लिए देखें, आचार्य जावडेकर लिखित 'आधुनिक भारत' अध्याय १०

जिसने उन्हें तिलक के निकट ला दिया था, अपना पूरा ऋण वापस लिया, परिणामस्वरूप दृश्यपट से तिलक के हट जाने पर केलकर उस राजनीतिक तूफान में, जिसने गांधी के नेतृत्व में समूचे देश को प्रभावित कर लिया था, अपने लिए एक सुरक्षित लंगर खोजते दिखाई देते हैं। केलकर ने गांधी के रूप में वह मौलिक शक्ति पहचान ली लेकिन गांधी इतने अननुमान्य थे, उनका तर्क इतना प्रतिकूल प्रतीत होता था और उनकी प्रणाली इतनी नवीन कि वे ऐसी किसी श्रेणी में नहीं आते थे जिसे केलकर जानते और समझते थे। तिलक को अपना राजनीतिक गुरु मानने वाले महाराष्ट्र के अनेक व्यक्तियों के साथ यही हुआ। गांधी ने राजनीति को कौंसिल चैम्बर से खेतों और कारखानों में जहां लाखों व्यक्ति काम करते थे ले जाकर, उनकी संदर्भ प्रणाली ध्वस्त कर दी। सदी के आरम्भिक दशकों की मध्यम वर्गीय राजनीति का सिक्का बंद हो गया और गांधी द्वारा तैयार किए गए राजनीतिक कार्यक्रम के सामने उसने अपनी सारी प्रासंगिकता खो दी। अस्पृश्यता, हिन्दू मुस्लिम एकता, संवैधानिक बनाम मूलगामी अवैधानिक राजनीतिक क्रियाकलाप, संक्षेप में, ऐसे सवाल जो अब हमारे स्वतंत्रता संघर्ष के इर्द-गिर्द थे, अब मंच के बीचोबीच प्रतिष्ठित हो चुके थे। राज भी महत्त्वपूर्ण प्रत्येक राजनीतिक नेता को इन सवालों द्वारा खड़ी की गई चुनौती का सामना करने के लिए राजनीतिक क्रिया कलाप की एक व्यावहारिक योजना बनानी थी। केलकर की त्रासदी यह थी कि वे अपनी पुरानी संदर्भ प्रणाली छोड़ नहीं सके और उसके स्थान पर नई नहीं ला सके। वे अब भी संवैधानिक रीतियों की कारगरता में भरोसा करते थे और अब भी सोचते थे कि अस्पृश्यता का सवाल स्वच्छ और अस्वच्छ जीवन विधि के बीच फर्क का सवाल था, कि मुसलमान भारत की स्वतंत्रता के मार्ग में सबसे बड़े रोड़े थे और कि उनका दुराग्रह गांधी की प्रेरणा से और बढ़ता जाता था। जैसे एक बच्चा चाकलेट पर नज़र डालता है, वैसे ही उनका हाल हुआ जब गांधी ने स्वीकार कर लिया कि संसदीय विचार बना रहेगा और कौंसिल में प्रवेश के प्रति अपना विरोध भाव खत्म कर दिया। वे हिन्दू महासभा के कट्टर समर्थक और उसके सक्रिय नेता बन गए। अपने चारों ओर की घटनाओं को उन्होंने बहुत स्पष्ट रूप से देखा और अच्छी तरह जान लिया था लेकिन उनसे सही निष्कर्ष निकालने की बुद्धिमत्ता का परिचय वे नहीं दे सके। सितम्बर १९४७ में 'सह्याद्रि' में प्रकाशित एक लेख में उन्होंने लिखा था : '१९२० से कांग्रेस गांधी के नेतृत्व में चली गई और हिन्दू राष्ट्र के प्रति आस्था खत्म कर ली। कांग्रेस की वास्तविक प्रकृति, इसकी राजनीति गलतियां, हिन्दू समाज के प्रति गद्दारी और आत्मघाती नीतियां अब दिन के उजाले की तरह साफ हो गई हैं। फिर भी, यदि ताज़ा चुनाव कराए जाएं तो हमारे हिन्दू कहलाने वाले लोग कांग्रेस

उम्मीदवारों को ही मत देने के लिए मतदान केन्द्रों पर जमा हो जाएंगे। हिन्दुओं के दुर्भाग्य पर यह एक दुःखपूर्ण टिप्पणी है।' लेकिन यह केलकर की बचकाना राजनीति पर भी उतनी ही दुखद टिप्पपणी है। यह स्वीकार करने के बजाय कि वे कहीं गलत हो सकते हैं, वे समूचे हिन्दू समुदाय पर यह आरोप लगाने का दुस्साहस कर डालते हैं कि वह उनके बुद्धिमत्तापूर्ण शब्दों पर ध्यान न देकर कांग्रेस का अंध-समर्थन कर रहा है। उनका राजनीतिक विवेक इतना बचकाना था कि वे विश्वास करने लगे थे कि फासीवादी तानाशाही जनतंत्र के समान ही एक जनतांत्रिक प्रकिया है। और कि यदि तिलक जिंदा रहते तो वे भी फासिस्ट बन जाते। यह स्वयं के साथ अन्यायपूर्ण और दूसरों के प्रति अनुचित व्यवहार होता है, जब केलकर जैसा व्यक्ति जो एक बौद्धिक होने का गर्व करता है, भविष्यवाणियां करने लगता है और पैगम्बर की भूमिका अपना लेता है।

□

अनुक्रमणिका

१. **आगरकर, गोपाल गणेश** (१८५६-१८९५)
महाराष्ट्र के महान् समाज सुधारक और बौद्धिक। इतिहास और दर्शन में एम० ए०। मिल और स्पैंसर के प्रभाव में आकर अज्ञेयवादी और बुद्धिवादी हो गए। अत्यधिक विपन्नता में पले होने पर भी उन्होंने वैतनिक कार्य करने से इनकार कर दिया और दूसरों की सेवा में ही अपना जीवन लगा देने का फसला किया।

२. **आप्टे, हरिनारायण** (१८६४-१९१९)
मराठी के प्रथम महान् उपन्यासकार और किस्सागो। बंगाली, फ्रेंच और जर्मन भाषाओं से परिचित। १४ वर्ष की आयु में लिखना शुरू किया। कालिदास और शेक्सपियर के महान अध्येता। १८८५ और १९१५ के बीच इक्कीस सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास लिखे जिनमें 'उषाकाल,' 'वज्रघट' (ऐतिहासिक) और 'पन लक्ष्यांत कोने घेटो' और 'मी' (सामाजिक) ज्यादा मशहूर हैं। २८ वर्षों तक 'कर्मणिक' साप्ताहिक का संपादन किया।

३. **चंदावरकर सर नारायण गणेश** (१८८५-१९२३)
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विख्यात नेता। इसके प्रथम सत्र (१८८५) में भाग लिया। १९०० में अध्यक्ष चुने गए। १८७८-१८८९ में 'इन्दुप्रकाश' के संपादक। बम्बई उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के रूप में ख्याति प्राप्त की। मांटफोर्ड सुधारों के बाद बम्बई विधानसभा के पहले अध्यक्ष। बम्बई विश्वविद्यालय के फेलो और बाद में उसके उपकुलपति।

४. **चिपलूणकर, विष्णुशास्त्री** (१८५०-१८८२)
प्रसिद्ध पिता कृष्णशास्त्री चिपलूणकर के प्रसिद्ध पुत्र। आधुनिक मराठी गद्य के निर्माता के रूप में सर्वत्र विख्यात। वे अपने को मराठी भाषा का शिवाजी कहा करते थे। 'निबंधमाला' जिसे उन्होंने १८७४ में आरंभ किया, के स्तंभों के जरिए उन्होंने जनता का आत्मविश्वास और महान अतीत में आस्था जगाई। अपने 'काव्येतिहास संग्रह' द्वारा उन्होंने इतिहास अध्ययन को प्रेरित किया। आत्म-निर्भरता की चेतना को बढ़ावा देने और राजकीय सेवा से इतर जीविका साधन जुटाने के लिए उन्होंने लिथो प्रेस 'चित्रशाला' 'किताबों की दुकान, किताबखाना' और 'आर्यभूषण' प्रेस आरंभ किया। 'केसरी', 'मराठा' तथा 'नवीन अंग्रेजी स्कूल' की स्थापना की। अनेकानेक मराठी लेखकों जैसे हरिनारायण आप्टे, शिवराम महादेव परांजपे, विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े, श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर, नरसिंह चिंतामण केलकर और पंगारकर के प्रेरणास्रोत रहे।

५. **दामले, कृष्ण जी केशव** (१८८६-१९०५)
अपने लेखकीय नाम 'केशवसुत' से विख्यात। आधुनिक मराठी कविता के जनक। अन्य कवियों जैसे बालकवि थोम्बरे, रैंदलकर, तिलक ने उनके प्रति अपने को ऋणी माना है। नई धारा के प्रवर्तक और अनेक लेखकों की भाँति वे भी मृत्यु के बाद प्रसिद्ध हुए। इसका श्रेय गडकरी द्वारा उनकी प्रशंसा को जाता है। उनकी अधिक प्रसिद्ध कविताओं में हैं 'तुतारी', 'जपूर्जा', 'स्फूर्ति', 'वातचक्र', 'आमी कोन', 'घुबड' इत्यादि।

६. **डोंगरे, पंडिता रमाबाई** (१८५०-१९२२)
संस्कृत की महान विदुषी और ईसाई मिशनरी। मैसूर राज्य में जन्मी। २२ वर्ष की उम्र में ही संस्कृत में प्रवीण हो गई। कन्नड, मराठी, बंगाली और हिन्दी का भी ज्ञान। भयंकर दिक्कतों के बीच १८७८ में कलकत्ता पहुंची और वहां बाल विवाह, भारतीय विधवाओं की दशा पर अपने भाषणों से बुद्धिजीवियों में सनसनी पैदा कर दी। हति विपिनबिहारी मेधावी के मृत्यु के पश्चात् पूना आ गई और जस्टिस रानाडे एवं सर रामकृष्ण भंडारकर के समर्थन से महिला शिक्षा आंदोलन चलाया। १८८३ में इगलैंड गई और वहीं ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। बम्बई में विधवा शिक्षा के लिए 'शारदा सदन' (१८९९) और पूना के पास केदगाँव में

'मुक्ति सदन' शुरू किया। १८६९ के अकाल में सैकड़ों महिलाओं को काल के गाल से छुड़ाया।

७. **गडकरी, राम गणेश** (१८८५-१९१९)
मराठी के मशहूर कवि, नाटककार और व्यंग्य-लेखक। लेखकीय नाम 'गोविंदाग्रज' से विख्यात। व्यंग्यलेखन के लिए मशहूर श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर के घनिष्ट मित्र। व्यवहारत : जीवन भर किर्लोस्कर थिएटर कम्पनी से जुड़े रहे। एक अन्य मराठी लेखक 'केशवसुत' का अपने को शिष्य मानते थे। प्रकाशित कृतियां: संगृहीत कविताओं का खंड, 'वाग्विजयिनी'। व्यंग्य लेख : 'सम्पूर्ण बालाक्रम', नाटक: 'प्रेम संन्यास', 'पुण्य प्रभाव' 'एकच प्याला', 'भववंधन,' 'राजसंन्यास'।

८. **जावडेकर, शंकर दत्तात्रेय** (१८९४-१९५५)
गांधी के राजनीतिक दर्शन के महान सिद्धांतकार। तिलक विद्यापीठ (१९२६) में इतिहास, अर्थशास्त्र और राजनीति के अध्यापक। गांधी के स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया। 'लोकशक्ति,' 'नवभारत,' 'साधना' के संपादक। 'राजनीतिक सिद्धांत की प्रस्तावना,' 'जनतंत्र और गांधीवाद, 'तिलक और गांधी' के लेखक। १९१८ के पश्चात् भारत के स्वतंत्रता संग्राम का विस्तृत और मौलिक विश्लेषण करने वाली पुस्तक 'आधुनिक भारत' के लिए विख्यात।

९. **जोशी, वामन मल्हार** (१८८२-१९४३)
समाज सुधारक। मराठी के आलोचक और लेखक के रूप में विख्यात। तर्कशास्त्र और दर्शन में एम० ए० करने के बाद समर्थ विद्यालय के आजीवन सदस्य बन गए। 'मराठा' और अन्य समाचारपत्रों में काम किया और अंततः १९१८ में महर्षि कर्वे के महिला विश्वविद्यालय में चले आए। मराठी गल्प साहित्य में नई प्रवृत्ति का श्रीगणेश करने वाले उपन्यासों, 'रागिनी' और 'इन्दु काले एवं सरला भोले' के लिए विख्यात।

१०. **काललकर, दत्तात्रेय बालकृष्ण उर्फ काका** (१८८५-१९८१)
महान् घुमक्कड़, शांतिनिकेतन इत्यादि अनेक शिक्षा संस्थाओं में काम किया

और अंततः गांधी के साबरमती आश्रम में बस गए। गुजरात विद्यापीठ की स्थापना में मुख्य भूमिका अदा की। गुजराती और हिन्दी भाषाओं में उदारवादी कलाविषयों पर आलोचनात्मक निबंधों के लिए विख्यात। अनेक तरुण गुजरती लेखकों को प्रेरणा दी।

११. **केलकर, डॉ० श्रीधर व्यंकटेश** (१८८४-१९३८)
एक सनकी प्रतिभाशाली व्यक्ति जो महाराष्ट्र को अंतरराष्ट्रीय विद्वमन्डली में अग्रणी रखने और विदेशी विद्वानों को यहां अध्ययन करने के लिए बाध्य करने की महत्त्वाकांक्षा रखते थे। वे एक अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान् थे। उपन्यास, कविता और नाटक के अलावा उन्होंने समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति पर भी व्यापक लेखन कार्य किया। मराठी विश्वकोश (१९१६-१९२७) के चयन और इसकी प्रस्तावना लिखने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए सर्वत्र विख्यात। उन्होंने यह कार्य किसी से भी आर्थिक सहायता लिए बगैर सम्पन्न किया और उसके लिए कार्य करने वालों को समुचित वेतन दिया।

१२. **खाडिलकर, कृष्णजी प्रभाकर** (१८७२-१९४८)
सांगली और पूना में शिक्षा ली। न० चि० केलकर के ठीक बाद 'केसरी' में काम शुरू किया और लोकमान्य तिलक के विश्वस्त सेनानी बन गए। विदेशी मामलों के विशेषज्ञ।' चित्रमय जगत्' के स्तम्भों में प्रथम विश्वयुद्ध की उनके द्वारा साप्ताहिक समीक्षा बहुत लोकप्रिय हुई। तिलक की मृत्यु के बाद 'केसरी' छोड़ दिया और अपना पत्र 'नवकाला' शुरू किया जिसका उन्होंने अपनी मृत्यु तक सफलता से संपादन किया। १९०७ और फिर १९१७ में नाट्य सम्मेलन के अध्यक्ष और १९३३ में साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष चुने गए। लगभग चौथाई सदी तक मराठी रंगमंच पर निर्विवाद रूप से इनका शासन रहा। पुराणकथात्मक और ऐतिहासिक नाटकों के ज़रिए आधुनिक राजनीतिक और सामाजिक विचारों को रखने की उनमें दुर्लभ क्षमता थी। उन्होंने कुल इक्कीस नाटक लिखे जिनमें 'मानापमान' 'स्वयंवर' (संगीतिक), 'कीचक वध', 'भववंदकी' (गद्य) अधिक प्रसिद्ध हैं।

१३. **खरे, वासुदेव वामनशास्त्री** (१८५८-१९२४)
कवि, नाटकार और इतिहासवेत्ता। विष्णुशास्त्री चिपलूणकर और काशीनाथ

नारायण साने के सम्पर्क के फलस्वरूप मराठी इतिहास का अध्ययन शुरू किया। तिलक एवं आगरकर के मित्र थे और कुछ समय तक न्यू इंगलिश स्कूल में अध्यापन भी किया। शीघ्र ही मिरज चले गए और बाकी जीवन भर वहीं रहे। पटवर्धन पत्रों के अपने व्यापक अध्ययन के लिए विख्यात जो १८९७ के बाद की ऐतिहासिक कृतियों के संग्रह में धारावाहिक प्रकाशित हुए थे।

१४. **कोल्हटकर, श्रीपादकृष्ण** (१८७१-१९३४)
सुपरिचित व्यंग्य लेखक, नाटककार, आलोचक और सभी विषयों के प्रतिभा शाली लेखक। १८९१ में दक्कन कालेज से बी० ए० और १९३७ में एल० एल० बी०, किया। कालेज जीवन से ही केलकर के मित्र। खगोलशास्त्र के गहन अध्येता, १९१८ में सांगली में हुई खगोलशास्त्रीय कांफ्रेंस में अध्यक्ष चुने गए। ग्यारह नाटक, दो उपन्यास, अनेक लघु कहानियां लिखीं। व्यंग्य रचनाओं का उनका संग्रह 'सुदामायाचे पोहे' आज भी बहुत लोकप्रिय है। समाज सुधार के पक्षधर उन्होंने 'माटीनिकास' और 'मुक नायक' नाटकों द्वारा विधवा-विवाह के उद्देश्यों का प्रचार किया और मद्यपान की बुराईयों के खिलाफ अभियान चलाया।

१५. **फडनीस, रावबहादुर दत्तात्रेय बलवंत** (१८७०-१९२६)
ऐतिहासिक दस्तावेजों और ऐतिहासिक रुचि की सामग्रियों के अपने संग्रह के लिए विख्यात जिसे बाद में १९२५ में सतारा के फडनीस म्यूज़ियम में एकत्र किया। 'रानी झांसी का जीवन', 'बुंदेलखंड में मराठा', 'पेशवा दफतर से उद्धरण' और अन्य अनेक ऐतिहासिक रुचि के प्रकाशनों के लिए मशहूर।

१६. **पोतदार, महामहोपाध्याय दत्तो वामन** (१८९० में जन्म)
स्नातक परीक्षा के बाद पूना की शिक्षण प्रसारण मंडली के आजीवन सदस्य हो गए। वि० का० राजवाड़े से प्रेरित होकर ऐतिहासिक अनुसंधान और जनसेवा पर ध्यान केन्द्रित किया। पचीस वर्षों तक भारत इतिहास संशोधक मंडल के सचिव रहे। अखिल भारतीय प्राच्य सम्मेलन हैदराबाद, भारतीय इतिहास कांग्रेस इलाहाबाद (१९३८) के मराठी विभाग के अध्यक्ष और मराठी साहित्य सम्मेलन (१९३९) के अध्यक्ष रहे। सरकार ने इतिहास

और साहित्य क्षेत्र में उनकी सेवा के लिए उन्हें महामहोपाध्याय की उपाधि से सम्मानित किया।

१७. **राजवाडे विश्वनाथ काशीनाथ** (१८६३-१९२६)
महाराष्ट्र के सुपरिचित ऐतिहासिक अनुसंधानकर्त्ता और भाषाशास्त्री। भारत इतिहास संशोधक मंडल (पूना) के संस्थापकों में एक। अनेक खंडों वाली अपनी पुस्तक 'मराठी इतिहास के स्रोत' के लिए प्रसिद्ध। प्रखर प्रतिभा, हाजिरजवाबी, सनकीपन और ऐतिहासिक घटनाओं की अत्यंत मौलिक व्याख्या के लिए मशहूर।

१८. **रानाडे महादेव गोविंद** (१८४२-१९०१)
उन्नसवीं सदी के महाराष्ट्र और भारत के एक उच्चतम व्यक्तित्व। समाज सुधारक, राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री और एक महान दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति के रूप में प्रसिद्ध जिसने हरेक समकालीन समस्या पर अपनी प्रखर प्रतिभा का प्रयोग किया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और समाज सम्मेलन के संस्थापकों में से एक।

१९. **सरदेसाई, रावबहादुर गोविंद सखाराम** (१८६५-१९५७)
प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता और लेखक। बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ के वाचक और उनके बेटे के अध्यापक के रूप काम किया। सभी नई और पुरानी उपलब्ध सामग्री का उपयोग करते हुए उन्होंने मराठों का प्रथम व्यापक इतिहास लिखा। 'पेशवा दफतर' का संपादन किया जिसके लिए उन्हें सतारा के छत्रिपति ने १९३४ में चांदी की थाली और विशेष परिधान देकर सम्मानित किया। १९४५ में राजवाड़े अनुसंधान संस्थान ने उन्हें 'इतिहास मार्तंड' की उपाधि दी। उनकी कृतियों में 'इतिहास के स्रोत', 'पेशवा दफतर,' 'मुगल, मराठा और अंग्रेज रियासतें', शाहजी, शिवाजी, संभाजी और राजाराम की जीवनियाँ प्रमुख हैं।

२०. **तिलक लोकमान्य बाल गंधाधर** (१८५६-१९२०)
महान् स्वतंत्रता सेनानी। 'भारतीय असहयोग आंदोलन के जनक'। 'न्यू

इंगलिश स्कूल के' संस्थापक सदस्य। केसरी के संपादक, विश्वविख्यात वैदिक विद्वान्। भारतीय जनता को सबसे पहले स्वराज्य का संदेश उन्होंने ही दिया अपने इन स्मरणीय शब्दों से, 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे प्राप्त करूंगा।'

२१. **तिलक, रेवरेंड नारायण वामन** (१८६२-१९१९)
प्रसिद्ध मराठी कवि। सारे महाराष्ट्र में यात्रा की और कीर्तनकार, कम्पोजीटर, अध्यापक, इत्यादि विभिन्न पदों पर काम किया। संस्कृत साहित्य में शोध और उनके अनुवाद के लिए वे १८९१ में नागपुर में बस गए। १८९५ में ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। अहमदनगर (१८८५-१९१७) और सतारा (१९१७-१९१८) में रहे। उनकी कृतियों में संग्रहीत कविताएँ, 'अभंगांजलि', 'वनवासी फूल', 'भजन संग्रह' और 'क्रिस्टायन' (अपूर्ण) प्रमुख हैं।

□

इस पुस्तकमाला के सम्बन्ध में

भारतीय साहित्य के इतिहास के निर्माण की दीर्घ यात्रा में जिन महान् प्राचीन अथवा अर्वाचीन प्रतिभाओं ने महत्त्वपूर्ण योग दिया है, उनका परिचय सामान्य पाठकों तक पहुँचाने के उद्देश्य से **'भारतीय साहित्य के निर्माता'** नामक पुस्तक-माला का प्रकाशन आरम्भ किया गया है, जिसके अन्तर्गत अब तक हिन्दी में निम्नांकित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं :

लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ	हेम बरुआ
बंकिमचन्द्र चटर्जी	सुबोधचन्द्र सेनगुप्त
बुद्धदेव बसु	अलोकरंजन दासगुप्त
चण्डीदास	सुकुमार सेन
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर	हिरण्मय बनर्जी
जीवनानन्द दास	चिदानन्द दासगुप्त
काजी नजरुल इस्लाम	गोपाल हाल्दार
महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर	नारायण चौधुरी
माणिक बन्द्योपाध्याय	सरोजमोहन मित्र
माईकेल मधुसूदन दत्त	अमलेन्दु बोस
प्रमथ चौधुरी	अरुणकुमार मुखोपाध्याय
राजा राममोहन राय	सौम्येन्द्रनाथ टैगोर
ताराशंकर बन्द्योपाध्याय	महाश्वेता देवी
सरोजिनी नायडू	पद्मिनीसेन गुप्त
तरुदत्त	पद्मिनी सेनगुप्त
गोवर्धनराम	रमणलाल जोशी
मेघाणी	वसन्तराव जटाशंकर त्रिवेदी
नानालाल	उमेदभाई मणियार
नर्मदाशंकर	गुलाबदास ब्रोकर
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	मदन गोपाल
बिहारी	बच्चन सिंह
देवकीनन्दन खत्री	मधुरेश
घनानन्द	लल्लन राय
जयशंकर प्रसाद	रमेशचन्द्र शाह
जायसी	परमानन्द श्रीवास्तव
महावीर प्रसाद द्विवेदी	नन्दकिशोर नवल
नन्ददुलारे वाजपेयी	प्रेमशंकर
प्रेमचन्द	प्रकाशचन्द्र गुप्त
राहुल सांकृत्यायन	प्रभाकर माचवे
रैदास	धर्मपाल मैनी
श्यामसुन्दरदास	सुधाकर पाण्डेय
सुभद्रा कुमारी चौहान	सुधा चौहान
बी० एम० श्रीकंठय्य	ए० एन० मूर्तिराव

बसवेश्वर	एच० थिप्पेरुद्रस्वामी
विद्यापति	रमानाथ झा
ए० आर० राजराज वर्मा	के० एम० जॉर्ज
चन्दु ेनन	टी० सी० शंकर मेनन
कुमारन् आशान	के० एम० जॉर्ज
महाकवि उल्लूर	सुकुमार अपिकोड
वल्लत्तोल	वी० हृदयकुमारी
दत्तकवि	अनुराधा पोत्दार
ज्ञानदेव	पुरुषोत्तम यशवन्त देशपाण्डे
हरिनारायण आपटे	रामचन्द्र भिकाजी जोशी
केशवसुत	प्रभाकर माचवे
नामदेव	माधव गोपाल देशमुख
नरसिंह चिंतामण केलकर	रामचन्द्र माधव गोले
श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर	मनोहर लक्ष्मण वराडपांडे
तुकाराम	भालचन्द्र नेमाड़े
फ़कीर मोहन सेनापति	मायाधर मानसिंह
राधानाथ राय	गोपीनाथ महन्ती
सरलादास	कृष्णचन्द्र पाणिग्राही
भाई वीर सिंह	हरबंस सिंह
दुरसा आढ़ा	रावत सारस्वत
जाम्भोजी	हीरालाल माहेश्वरी
मुंहता नैणसी	वृजमोहन जावलिया
सूर्यमल्ल मिश्रण	विष्णुदत्त शर्मा
बाणभट्ट	के० कृष्णमूर्ति
भवभूति	गो० के० भट
जयदेव	सुनीति कुमार चटर्जी
कल्हण	सोमनाथ धर
क्षेमेन्द्र	ब्रजमोहन चतुर्वेदी
माघ कवि	चण्डिकाप्रसाद शुक्ल
सचल सरमस्त	कल्याण बू० आडवाणी
शाह लतीफ़	कल्याण बू० आडवाणी
भारती	प्रेमा नन्दकुमार
इलंगो अडिगल	मु० वरदराजन
कम्बन	एस० महाराजन
माणिक्कवाचकर	जी० वंमीकनाथन
पोतन्ना	दिवाकर्ल वेंकटावधानी
वेदम वेंकटराय शास्त्री	वेदम वेंकटराय शास्त्री (कनिष्ठ)
गुरजाड	नार्ल वेंकटेश्वर राव
वीरेशलिंगम्	नार्ल वेंकटेश्वर राव
वेमना	नार्ल वकटेश्वर राव
ग़ालिब	मु० मुजीब

87457
26-6-96

तात्यासाहेब केलकर के नाम से परिचित नरसिंह चिंतामण केलकर (1872-1947) एक पत्रकार, इतिहासकार और सहृदय कलाकार थे। व्यक्तिगत समग्रता, जन-व्यवहार में ईमानदारी, सादा जीवन, पुस्तकों, संगीत और जीवन की सभी अच्छाइयों के प्रति प्यार और आदर, सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना, परिवार, मित्रों और देश के प्रति निष्ठा आदि केलकर की विशेषताएँ थीं।

केलकर ने कविता, नाटक, इतिहास, कथा-साहित्य, उपन्यास, समीक्षा, जीवनी, सम्पादकीय, निबन्ध आदि साहित्य की सभी विधाओं में समान अधिकार और सरलता से रचना की।

सन् 1932 में उनके मित्रों, प्रशंसकों तथा अनेक साहित्यिक संस्थाओं ने उन्हें 'साहित्य-सम्राट्' की उपाधि से सम्मानित किया था।

इस पुस्तिका के लेखक रामचन्द्र माधव गोले बम्बई और लन्दन विश्वविद्यालयों से अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य के स्नातक तथा एस० एल० डी० आर्ट्स कालेज, अहमदाबाद के अंग्रेज़ी के भूतपूर्व प्राध्यापक हैं। इन्होंने भारतीय स्वतंत्रता-आन्दोलन में भी भाग लिया था। लिए प्रचलित 'अन्तर भारती आन्द सम्बद्ध रहे हैं।

Library IIAS, Shimla
H 891.46 K 279 G
00087451

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15·00